वेदव्यासपरम्परा

डा॰ कुंवरलाल व्यासशिष्य

H
294.1 V 99 V

H
294.1
V99V

सविद्याप्रकाशन, दिल्ली

वेदव्यासपरम्परा

लेखक
डा० कुँवरलाल व्यासशिष्य
आचार्य, एम० ए०, पी० एच० डी०

इतिहासविद्या प्रकाशन, दिल्ली

© प्रकाशक,
इतिहासविद्या प्रकाशन
आरा मशीन गली, धर्म कालोनी,
नाँगलोई, दिल्ली-११००४१

प्रथम संस्करण—१९८४

मूल्य : २०-०० रुपये मात्र

मुद्रक : ए० के० प्रिन्टर्स,
मानकपुरा, करोल बाग,
नई दिल्ली-११०००५

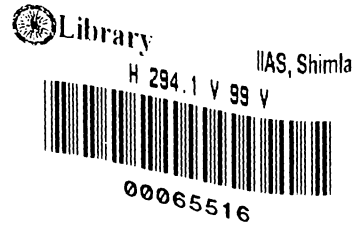

विषयसूची

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय — वेदव्यासपरम्परा — १—४३

३० व्यास, स्वयम्भू ब्रह्मा, सनत्कुमार, विप्रचित्ति, वरुण, भृगु, दध्यङ् आथर्वण, उशना काव्य, बृहस्पति, विवस्वान् (सूर्य)—पंचमवेदव्यास, षष्ठव्यास—यम वैवस्वत, सप्तमव्यास—इन्द्र, अष्टमव्यास—वसिष्ठ, नवमव्यास—अपान्तरतमा सारस्वत, त्रिधामा, भरद्वाज, वाजश्रवा, ऋक्षवाल्मीकि, शक्ति, पराशर, अन्तिम व्यास—कृष्णद्वैपायन पाराशर्य।

व्यासकृतवेदप्रवचनकाल, व्यासशिष्यपरम्परा—वेदाचार्य पैल, वैशम्पायन चरक, वाजसनेय याज्ञवल्क्य, सामग आचार्य जैमिनि, अथर्वाचार्य सुमन्तु।

द्वितीय अध्याय — वेदाचार्यपरम्परा — ४४—६७

कल्पसूत्रकार पाणिनि की तिथि, वेदाचार्य कुलपति शौनक, वेदाचार्यों का ऐतिहासिक क्रम—पैल, सुमन्तु, पाराशर, जातूकर्ण्य, शाम्बव्य, यास्क, पैङ्गय मधुक, ताण्ड्य, आरुणपराशर, आश्मरव्यआलेखन, धानांजय सुषामा, लाट्यायन ऐतरेय, आसुरि, जैमिनि, जाबाल, हारीत, कठ,कालाप, आश्वलायन, कात्यायन, भारद्वाज, मानव, वाराह, सत्याषाढ़, बौधायन, वाधूल और वैखानस।

ग्रन्थसंकेतसूची

अथर्व० या अ०	=अथर्ववेद
आ० श्रौ०	=आपस्तम्बश्रौतसूत्र
ऐ० ब्रा०	=ऐतरेयब्राह्मण
ऋ०	=ऋग्वेद
का० सं०	=काठकसंहिता
का० श्रौ०	=कात्यायनश्रौतसूत्र
जै० ब्रा०	=जैमिनीयब्राह्मण
ताण्ड्य	=ताण्ड्यब्राह्मण
तै० ब्रा०	=तैत्तिरीयब्राह्मण
तै० सं०	=तैत्तिरीयसंहिता
नि०	=निरुक्त
म० स्मृ०	=मनुस्मृति
म० या महा०	=महाभारत
मु०	=मुण्डकोपनिषद्
बृहद्दे०	=बृहद्देवता
बृ० उ०	=बृहदारण्यकोपनिषद्
ब्र० पु०	=ब्रह्माण्डपुराण
रा०	—रामायण
वा०	=वायुपुराण
विष्णु०	=विष्णुपुराण
वै० वा० इ०	=वैदिक वाङ्मय का इतिहास
शा०	=शान्तिपर्व
श० ब्रा०	=शतपथब्राह्मण
शु० य०	=शुक्लयजुर्वेद
हरि०	=हरिवंशपुराण

प्रथम अध्याय

वेदव्यासपरम्परा

इस अध्याय में हम सर्वप्रथम वेदाचार्यपरम्परा के अखण्डस्वरूप का समास व्यासरूप से विवेचन प्रस्तुत करेंगे, जिससे कि जिज्ञासुओं को ज्ञात होगा कि वेद या श्रुति की परम्परा कितनी प्राचीन एवं समृद्ध रही है।

'वेदश्रुति' का अर्थ—'श्रूयते इति श्रुतिः अर्थात् गुरुशिष्यपरम्परा के अनुसार जो ज्ञान (वेद) श्रवण किया जाता है, उसे 'श्रुति' कहते हैं। अतः वेद की 'श्रुतिः' संज्ञा इसी कारण से लोक में प्रसिद्ध हुई। अतिपुरातनकाल में 'वेद' पद ऋग्वेदादिसंहिताओं तक ही सीमित नहीं था। यह शब्द, ज्ञान, विज्ञान या विद्या का वोधक था, यथा आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, नाट्यवेद, आदि संज्ञायें अभी तक प्रचलित हैं। परन्तु इस समय 'वेद' से तात्पर्य ऋग्वेदादिसंहिताओं से ही ग्रहण किया जाता है, अतः इस अध्याय में इसी वेदाचार्यपरम्परा का वर्णन करेंगे।

इतिहासपुराणों तथा वैदिकग्रन्थों में प्रमुख वेदाचार्यो की अनेक परम्परायें उल्लिखित हैं। उनमें प्रधान-प्रधान वेदाचार्य प्रायेण समान हैं, अतः सर्वप्रथम यहाँ हम वेदाचार्यो की कुछ प्रमुख सूचियाँ प्रस्तुत करते हैं।

३० वेदव्यास—स्वयम्भू (ब्रह्मा), मातरिश्वा, उशना, बृहस्पति, विवस्वान्, वैवस्वत यम, काश्यप इन्द्र, वसिष्ठ, सारस्वत (अपान्तरतमा), त्रिधामा, शरद्वान्, त्रिविष्ट, अन्तरिक्ष, वर्षि, त्र्यारुण, धनञ्जय, कृतञ्जय, तृणञ्जय, भरद्वाज, गौतम, निर्यन्तर, वाजश्रवा, सोमशुष्म, तृणविन्दु, ऋक्ष(वाल्मीकि),शक्ति,पराशर, हिरण्यनाभ, जातूकर्ण और कृष्णद्वैपायन।

शतपथब्राह्मण में मधुविद्या के प्रसंग में वेदाचार्यों की निम्न परम्परा उल्लिखित है—

(१) स्वयम्भू
|
(२) परमेष्ठी
|

(३) सनग
|
(४) सनातन
|

(५) सनारु
|
(६) व्यष्टि
|
(७) विप्रचित्ति
|
(८) एकर्षि
|
(९) प्रध्वंसन
|
(१०) मृत्यु प्राध्वंसन
|
(११) अथर्वा दैव
|
(१२) दध्यङ्ङाथर्वण
|
(१३) अश्विनीकुमार
|
(१४) विश्वरूप त्वाष्ट्र
|
(१५) आभूति त्वाष्ट्र
|
(१६) अयास्य आङ्गिरस
|
(१७) पन्था सौभर
|
(१८) वत्सनपात् वाभ्रव
|
(१९) विदर्भी कौण्डिन्य
|
(२०) गालव
|
(२१) कुमारहारीत
|
(२२) कैशोर्य काप्य
|
(२३) शाण्डिल्य
|
(२४) वात्स्य
|
(२५) गौतम
|
(२६) माण्टि
|
(२७) आत्रेय
|
(२८) भारद्वाज
|
(२९) आसुरि
|
(३०) ओपजन्धनि
|
(३१) त्रैवर्णि
|
(३२) आसुरायण
|
(३३) यास्क
|
(३४) जातूकर्ण्य
|
(३५) पाराशर्य (व्यास)
|
(३६) पाराशर्यायण
|
(३७) घृतकौशिक
|
(३८) कौशिकायनि
|

(३९) वैजवापायन
|
(४०) पाराशर्य
|
(४१) भारद्वाज
|
(४२) गौतम
|
(४३) भारद्वाज
|
(४४) पाराशर्य
|
(४५) प्राचीनयोग्य
|
(४६) सैतव
|
(४७) गौतम
|
(४८) आनभिम्लात
|
(४९) आनभिम्लात (द्वितीय)
|
(५०) आनभिम्लात (तृतीय)
|
(५१) अग्निवेश्य
|
(५२) कौशिक
|
(५३) शाण्डिल्य
|
(५४) कौण्डिन्य
|
(५५) कौशिक
|
(५६) गौपवन
|
(५७) पौतिमाष्य
|
(५८) गौपवन
|
(५९) पौतिमाष्य

(बृ० उ० २।६।३)

इसी से मिलती जुलती एक अन्य वेदाचार्यपरम्परा बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय ४।६।१-३) में मिलती है, इसमें निम्न विशिष्ट वेदाचार्यों का उल्लेख है—गार्ग्य, गार्ग्यायण उद्दालकायन, जाबालायन, माध्यदिनायन, सौकरायण, काषायण, साकायन और कौशिकायन।

अब कुछ विशिष्ट एवं प्रसिद्ध वेदाचार्यों का संक्षेप में परिचय लिखते हैं।

स्वयम्भ् ब्रह्मा—३० वेदव्यासों में ब्रह्मा सर्वप्रथम हैं। भारतीयपरम्परा में स्वयम्भू ब्रह्मा को सभी विद्याओं का मूलप्रवर्तक माना गया है। इतिहासपुराणों से ज्ञात होता है कि पृथ्वी के ज्ञात इतिहास में स्वयम्भू प्रथम ऐतिहासिक पुरुष था, उनका अपत्य हुआ स्वायम्भुव मनु। अपत्यनाम झूठे नहीं हो सकते, अतः स्वयम्भू

और उनका पुत्र स्वायम्भुव मनु दोनों ही ऐतिहासिक पुरुष मानने पड़ते हैं, वैसे 'ब्रह्मा' पद एक उपाधि थी, जो अनेक पुरुषों ने धारण की। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३८५ के अनुसार सात ब्रह्मा हो चुके हैं, जिनके नाम थे—

१) मानस ब्रह्मा
२) चाक्षुष ब्रह्मा
३) वाचस्पत्य ब्रह्मा
४) श्रावण ब्रह्मा
५) नासिक्य ब्रह्मा
६) हिरण्यगर्भ ब्रह्मा (अण्डज)
७) कमलोद्भव (पद्मज) ब्रह्मा

वर्तमान मानव का ज्ञात इतिहास सप्तम पद्मज ब्रह्मा से आरम्भ होता है। इस वर्तमान मानवसृष्टि से पूर्व न जाने कितनी बार इस पृथ्वी पर मानवसृष्टि हुई होगी, इसको कौन जाने। वेद में उल्लेख है 'अर्वाक् देवाः' जब देवता ही उत्तरकाल में उत्पन्न हुये, तो देवों से पूर्व के इतिहास को मनुष्य कैसे जान सकता है, फिर भी सात ब्रह्माओं की स्मृति इतिहासपुराणों में विद्यमान है, जिनसे सात बार मानवसृष्टि हुई।

प्राणियों में ब्रह्मा सर्वप्रथम उत्पन्न हुए—

'भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे ' (अथर्ववेद)

ब्रह्मा स्वयं आकाशादि से उत्पन्न हुआ, इसलिए उसको 'स्वयम्भू' कहते हैं। यही अर्थ 'आत्मभू' शब्द का है। 'आत्मभू' पद का अपभ्रंश हुआ 'आदम'। यहूदी और अरब उसको 'आदम' ही कहते थे। बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेन्ट) में बाबा आदम और हौवा (स्त्री-शतरूपा) की कथा मिलती है। 'आदम' की सन्तान 'आदमी' कहलाई। यह 'आदम' ही भारतीय आत्मभू (स्वयम्भू ब्रह्मा) था।

पुरातन इतिहास डार्विन के विकासवाद का खण्डन करता है कि मनुष्य शनैः शनैः बन्दर से विकसित हुआ। वास्तव में मनुष्य प्रारम्भ से ही मनुष्य था। 'मनुष्य' शब्द का अर्थ निरुक्त (३।२।७) में इस प्रकार बतलाया है—'मनुष्याः कस्मान्मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति, मनस्यमानेन सृष्टाः। मनस्यतिः पुनर्मनस्वीभावे मनोरपत्यं मनुषो वा ॥ ७ ॥" 'क्योंकि मनुष्य, मनुष्य इसलिए है, कि वह कार्य बुद्धिपूर्वक करता है, अथवा बुद्धिपूर्वक उसकी सृष्टि हुई है, अथवा मनु या मनुष् का अपत्य (सन्तान) है।"

स्वयम्भू के अनेक नाम प्राचीनग्रन्थों में मिलते हैं, यथा, ब्रह्मा, स्वयम्भू आत्मभू, आदिदेव, क, हिरण्यगर्भ, पुरुष, प्रजापति, पद्मगर्भ, पद्मयोनि इत्यादि।

ब्रह्मा निश्चय ही प्रथम ऐतिहासिक मानव था। वह सर्वज्ञानमय था। पृथ्वी पर समस्तज्ञान का प्रादुर्भाव ब्रह्मा से हुआ। वेदों का प्रथम उपदेष्टा या निर्माता ब्रह्मा था—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। (श्वेताश्वतरोपनिषद्)

मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट लिखा है—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥

"ब्रह्मा ने सब देवों से पहले जन्म लिया, वह सबका कर्त्ता और प्राणियों का रक्षक था। उसने सर्वविद्याओं का सारभूत ब्रह्मविद्या को अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वा को पढ़ाया।"

यहाँ पर अथर्वा या भृगु का पिता ब्रह्मा को बतलाया है, परन्तु इतिहास से ज्ञात है कि अथर्वा वरुण आदित्य के पुत्र थे, इसी प्रकार दक्ष प्रजापति प्रचेताओं के पुत्र थे, परन्तु उन्हें ब्रह्मा का पुत्र भी कहा जाता है, इसी प्रकार रुद्र, सनत्कुमार नारद, वसिष्ठ इत्यादि के विषय में भी समझना चाहिए। वेदों के अतिरिक्त धर्म-शास्त्र, आयुर्वेद इत्यादि ही नहीं रामायण, पुराण और महाभारत तक को ब्रह्मा से सम्बद्ध कर दिया गया है। प्रतीत होता है कि जब किसी नवीन शास्त्र का प्रादुर्भाव होता था तथा किसी वंश के आदिपुरुष (प्रवर्तक) का नाम विस्मृत हो जाता था तो उसे एकदम ब्रह्मा से सम्बद्ध कर दिया जाता था। परन्तु इससे आत्मभू ब्रह्मा की ऐतिहासिकता का अपलाप नहीं होता, परन्तु इससे ब्रह्मा का प्राथम्य ही प्रथित होता है।

स्वायम्भुवमन्वन्तर के प्रारम्भ में मधुकैटभ दानवों ने ब्रह्मा से वेदों का अपहरण कर लिया था। यह निश्चय ही ऐतिहासिक घटना थी, जिसका समय निश्चित करना अत्यन्त दुष्कर है। यह घटना देवयुग से पूर्व वराहावतार से भी पूर्व की है। इसका समय न्यूनतम २०००० वि० पूर्व था। उस समय हयशिरोधर नाम के महापुरुष ने रसातल से वेदों को लाकर ब्रह्मा को दिया—

एतस्मिन्नन्तरे राजन् देवो हयशिरोधरः।
जग्राह वेदानखिलान् रसातलगतान् हरिः॥

(शान्तिपर्व, अ० ३७५)

ब्रह्मा को, वेदों के अतिरिक्त, निम्न शास्त्रों का आदिप्रणेता बतलाया गया है—

१. पुराण
२. ब्रह्मविद्या (उपनिषद्)
३. योगशास्त्र (हैरण्यगर्भ-योगशास्त्र)
४. आयुर्वेद
५. हस्त्यायुर्वेद
६. रसतन्त्र
७. धनुर्वेद
८. शिल्पशास्त्र
९. धर्मशास्त्र (चित्रशिखण्डीधर्मशास्त्र)
१०. अर्थशास्त्र (राजनीतिशास्त्र)
११. कामशास्त्र
१२. ब्राह्मीलिपि
१३. ज्योतिषशास्त्र (पैतामहसिद्धान्त)
१४. गणित
१५. अश्वशास्त्र
१६. पदार्थविज्ञान
१७. इतिहास
१८. नाट्यवेद

वदों के साथ वेदव्यास ब्रह्मा का पुराणों से घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिसृताः ।।

(मत्स्यपुराण ३।३)

आदिपुराण या मूलपुराण, जो कि प्रथमपुराण है उसको ब्रह्मा के नाम से ही ब्रह्मपुराण कहा जाता है ।

प्रजापति ब्रह्मा की श्रुति नित्य मानी जाती है और शाखायें या पाठान्तर इसके विकल्प हैं—

"प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्वेमे स्मृताः ।।"

(वायुपुराण ६१।७५)

प्राचीनमत के अनुसार वेदमन्त्र या छन्द नित्य हैं, वे बनाए नहीं जाते—"न हि

च्छन्दांसि क्रियन्ते नित्यानि च्छन्दांसि इति, यद्यप्यर्थो नित्यो वा त्वसौ वर्णानुपूर्वी सा नित्या, तद्भेदाच्चैवं तद् भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति ॥" इन मन्त्रों का अर्थ या वर्णानुपूर्वी नित्य होती है। वर्णानुपूर्वी के अन्तर से ही काठक, कालापक, मौदक या पैप्पलाद भेद प्रथित हुए।

इस समय वेदमन्त्रों के समस्तपाठ शाखा या पाठान्तर ही हैं। ब्रह्मा के मूलमन्त्र कितने सुरक्षित हैं, यह निर्णय करना असम्भव है। शतपथब्राह्मण (१०।४।२।२३) के अनुसार प्रजापति द्वारा रचित द्वादशसहस्र ऋचायें थीं—

"द्वादश बृहतीसहस्राण्येतावत्यो ह्यर्चो याः परमेष्ठी (कश्यप) प्रजापति-सृष्टाः।"

ये प्रजापति कश्यप भी हो सकते हैं, जो वेदों के मूलप्रवर्तकों में एक थे, तथा वे ही देवों और पूर्वदेवों (दानवों) के पिता थे। इनको ही यज्ञशील होने के कारण 'परमेष्ठी' कहा जाता था। बृहदारण्यक की पूर्वनिर्दिष्ट वंशसूची मे 'परमेष्ठी' 'स्वयम्भू' के शिष्य कथित हैं। प्रतीत होता है कि वेदों के आदिप्रणेता या प्रवर्तक परमेष्ठी कश्यप ही थे, इनकी श्रुति को 'प्राजापत्यश्रुति' कहा जाता था। शतपथादिब्राह्मणग्रन्थों में जहाँ भी ऐतिहासिक प्रजापति का उल्लेख है, वहाँ कश्यप से ही तात्पर्य है—

'स प्रजापतिरिन्द्रं ज्येष्ठं पुत्रमपन्यधत्त। नेदेनमसुरा बलीयांसोऽहन्निति।
(तैत्तिरीयब्राह्मण १।५।६)

'देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्दुह्याः पुत्रा आसन्।
(ताण्ड्यब्राह्मण १८।१।२)

अतः जो लोग 'प्रजापति' का अर्थ 'ब्रह्मा' लगाते हैं, वे महान् भ्रम में हैं। पुराणों में भी बहुधा उल्लिखित 'प्रजापति' भी कश्यप ही है।

सम्भवतः सर्वप्रथम प्रजापति कश्यप ने ही एकसहस्रसूक्तों की रचना की थी—

जातवेदस्यं सूक्तसहस्रमेकम्
ऐन्द्रात्पूर्वं कश्यपस्यार्षं वदन्ति।
जातवेदसे सूक्तमाद्यं तु तेषाम्।
एकभूयस्त्वं मन्यते शाकपूणिः॥ (बृहद्देवता ३।१३०)

"कुछ विद्वान् कहते हैं कि ऐन्द्रसूक्त (ऋग्वेद १।१००) से पूर्व जातवेदा अग्नि से सम्बन्धित एकसहस्रसूक्तों के ऋषि कश्यप थे। इनमें प्रथमसूक्त 'जातवेदसे' हैं,

शाकपूणि के मत से इनमें एक मन्त्र की क्रमशः वृद्धि होती है।" इस सम्बन्ध में सर्वानुक्रमणी के वृत्तिकार षड्गुरुशिष्य ने शौनक आर्षानुक्रमणी का यह पाठ उद्धृत किया है—

खिलसूक्तानि चैतानि त्वाद्यैकर्चमधीमहे ।
शौनकेन स्वयं चोक्तमृष्यनुक्रमणे त्विदम् ।।
पूर्वात्पूर्वा सहस्रस्य सूक्तानामेकभूयसाम् ।
जातवेदसे इत्याद्यं कश्यपार्षस्य शुश्रुम ।।
सयोवृषीयान्ता वेदमध्यास्त्वखिलसूक्तगाः ।
ऋचस्तु पंचलक्षाः स्युः सैकोनशतपंचकम् ।।

पण्डित भगवद्दत्त ने लिखा है "अर्थात् इन ९९९ सूक्तों में ५००४९९ मन्त्र थे।" अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या ये मन्त्र कभी ऋग्वेद के अंग थे। माध्यदिन शतपथब्राह्मण ने याज्ञवल्क्य के कथन का यह अभिप्राय है कि नहीं, ऐसा नहीं था। वहाँ लिखा है—'द्वादशबृहतीसहस्राणि। एतावत्यो ह्यर्चो या प्रजापतिसृष्टाः।' अर्थात् प्रजापति (कश्यप) सृष्ट (रचित) ऋचायें बारह सहस्र बृहती छन्द परिमाण की है। (वैदिक वाङ्मय का इति० पृ० १९८) पं० भगवद्दत्त के विपरीत हमारा विचार है कि पाराशर्य व्यास सम्पादित ऋग्वेद में ही द्वादशसहस्र ऋचायें थी, जिनका उल्लेख याज्ञवल्क्य ने किया है। देवयुग एवं उससे पूर्व प्रजापतियुग में वेदों में लाखों ऋचायें थीं, जो इस समय क्या याज्ञवल्क्य और व्यास के समय ही अधिकांश लुप्त हो गईं थीं, पाराशर्यव्यासपूर्व २७ व्यासों एवं कश्यप जैसे आद्य महर्षियों ने वेदों की लाखों ऋचाओं की सृष्टि की थी। वेद का वर्तमानरूप सनातन नहीं है, इसमें परिवर्तन होता आया है और याज्ञवल्क्य और कश्यप में कम से कम द्वादशसहस्रवर्षों का अन्तर था, इतने दीर्घकाल में वेदों का स्वरूप कितना लुप्त या परिवर्तित हुआ होगा, यह विचारणीय है। अतः कश्यप ने पञ्चलक्षात्मक ऋग्वेद का सम्पादन किया, यह सत्य है। कश्यप के पिता मरीचि स्वायम्भुव मन्वन्तर किंवा चाक्षुषमन्वन्तर के प्रधान ऋषि थे। ये मरीचि आद्य सप्तर्षियों में प्रधान थे—

भृगु पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा ।
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम् ।

ये मरीचि आदि ऋषि प्रचेताओं के पुत्र या वंशज थे। देवयुग में इनका अस्तित्व ज्ञात नहीं होता, अतः ये पृथुवैन्य के काल में हुए और इन्होंने इसी समय 'चित्र शिखण्डी' नाम से प्रसिद्ध लक्षश्लोकात्मक धर्मशास्त्र रचा। मरीचि देवयुग से पूर्व ही परलोक सिधार गए थे। इनके पुत्र कश्यप प्रधान थे, जिनका उल्लेख बृहद्देवता में इस प्रकार है—

प्राजापत्यो मरीचिर्हि मारीचः कश्यपो मुनिः ।
तस्य देव्योऽभवञ्जाया दाक्षायण्यस्त्रयोदश ।
तत्रैका त्वदितिर्देवी द्वादशाजनयत्सुतान् ।
भगश्चैवार्यमांशश्च मित्रो वरुण एव च ।
धाता चैव विधाता च विवस्वांश्च महाद्युतिः ॥
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥

(बृहद्देवता ५।१४३, १४६, १४७, १४८)

"प्रजापति के पुत्र मरीचि थे, मरीचि के पुत्र हुए कश्यपमुनि । दक्ष की तेरह पुत्रियाँ कश्यप की पत्नियाँ थीं । इनमें से एक अदितिदेवी ने बारह पुत्रों को जन्म दिया—भग, अर्यमा, अंश, मित्र, वरुण, धाता, विधाता, महातेजस्वीविवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु ।"

इनमें विवस्वान् वेदों के पाँचवें व्यास थे और इन्द्र सातवाँ वेदव्यास था । इनका परिचय आगे लिखा जाएगा । इससे पूर्व कुछ अन्य वेदाचार्यों का परिचय लिखते हैं ।

सनत्कुमार—श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने सप्तर्षियों से पूर्व सनकादि चार ऋषियों का प्रादुर्भाव माना है—

"महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्था ।" (गी० १०।६)

इनको बृहदारण्यक या शतपथ की वेदाचार्यसूची में इस प्रकार कहा है—'सनग, सनातन, सनारु और व्यष्टि ।' पुराणों में इनकी ही संज्ञा सनत्कुमार, सनत्सुजात इत्यादि है । इनमें महाभारतातर्गत सनत्सुजातीयपर्व में सनत्सुजात ऋषि ने धृतराष्ट्र को अमृतविद्या का ऊपदेश दिया है । सनत्सुजातीय के द्वितीय अध्याय में वेदों के सम्बन्ध में कहा है—

आख्यानपञ्चमैर्वेदैर्भूयिष्ठं कत्थ्यते जनः ।
तथा चान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथापरे ।
द्विवेदाश्चैकवेदाश्च अनृचश्च तथापरे ॥
एक वेदस्य चाज्ञानाद् वेदास्ते बहवोऽभवन् ॥

(२।३५, ३६, ३७)

"कोई पुरुष पुराणसहित पाँच वेद मानते हैं, कोई चार वेद और त्रिवेद और कोई एक वेद तथा अनृच होते हें । वास्तव में एक वेद के ही सम्यक्स्वरूप को न जानने के कारण बहुत से वेद हो गये ।"

कोई कोई विद्वान् सनत्कुमार को शिवपुत्र कार्तिकेय स्कन्द या कुमार ही मानते हैं, जिनकी पुष्टि प्रमाणाभाव में अभी तक नहीं हुई है। वाल्मीकि ने सनत्कुमार का उल्लेख इस प्रकार किया है—

एवं स देवप्रवरः पूर्वंकथितवान् कथाम्।
सनत्कुमारो भगवान् पुरा देवयुगे प्रभुः॥

(रामायण १।६।१२

छान्दोग्योपनिषद् (७।१।१) से सनत्कुमार की प्राचीनता वेदाचार्यता की पुष्टि होती है, यहाँ नारद जैसे प्रसिद्ध देवर्षि, सनत्कुमार से आत्मविद्या सीखते हैं— "ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच...।" 'हे भगवन्। मुझे उपदेश दीजिए।' ऐसा कहते हुए नारदजी सनत्कुमार जी के पास गए।' इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि सनत्कुमार नारद से भी अधिक विद्वान् एवं पूज्य वेदाचार्य थे।

विप्रचित्ति—नारद के समकालीन पूर्वदेव दानवेन्द्र विप्रचित्ति भी व्यष्टि या सनत्कुमार का शिष्य था। दानवेन्द्र 'विप्रचित्ति' नाम से ही प्रकट होता है कि यह उत्तम विद्वान् (ब्राह्मण) ब्रह्मवेत्ता था। यह दानवों का प्रथम सम्राट् था—

दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद् बलदर्पितम्।
विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूद् येषां मध्येमहाबलः।

(मत्स्यपुराण ६।१६)

विप्रचित्तिं च राजानं दानवानामथादिशत्॥

(वायुपुराण ७०।७)

दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु आदि दैत्य हुए। दानव और दैत्य समकालीन ही थे, ये दोनों ही पूर्वदेव और असुर कहे जाते थे। इन्द्रादि देवों से पूर्व होने से ये 'पूर्वदेव' नाम से प्रथित हुए। देवों से पूर्व पृथ्वी पर असुरों का साम्राज्य था—

असुराणां वा इयं (पृथ्वी) अग्र आसीत्॥ (तै० ब्रा० ३।२।६।६)

ये असुर शिल्पविद्या में अत्यन्त निपुण थे, इसीलिए अमितप्रज्ञ और मायावी (वैज्ञानिक) कहे जाते थे। लोहा आदि धातुओं की खोज सम्भवतः सर्वप्रथम असुरों ने की—

असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा।
आयसं पात्रमादाय मायां शत्रुनिबर्हणीम्॥ (हरिवंश ६।२६)

पृथ्वीदोहन के समय असुरों ने आयसपात्र का प्रयोग किया, जिससे सिद्ध होता है कि उन्होंने इसी समय लोहादि धातु पृथ्वी से निकालना प्रारम्भ किया—

विरोचनश्च प्राह्लादिर्वत्स आसीत्, अयस्पात्रं पात्रम्।

(अथर्ववेद ८।१०।१२)

यज्ञसंस्था का प्रवर्तन प्रथम असुरों ने ही किया—

'असुरेषु वा एष यज्ञ अग्र आसीत्।' (शतपथ १२।९।३।७)

देवों की अपेक्षा वैदिक छन्द या मन्त्र असुरों के पास अधिक थे—

'कनीयांसि वै देवेषु छन्दांस्यासन् ज्यायांस्यसुरेषु।' (तै० सं० ६।६।११)

ये वेदमन्त्र दायभाग या परम्परा में पिता कश्यप से असुरों को अधिक मिले। पूर्व लिखा जा चुका है कि कश्यप ने पांच लाख वेदमन्त्रों की रचना की थी।

त्वष्टा, शण्डामर्क, त्वष्टावरूत्री तथा शुक्राचार्य असुरों के प्रसिद्ध पुरोहित थे, ये मन्त्रद्रष्टा भी थे। इनका वर्णन तृतीय व्यास उशना के प्रसङ्ग में करेंगे।

वरुण—अदितिपुत्र वरुण असुरों का प्रमुख ब्राह्मण था, कि उसके वंश में निम्नलिखित प्रसिद्ध वेदाचार्य हुये, वरुण स्वयं भी वेद का प्रमुख ज्ञाता था—वरुण शुक्राचार्य का पितामह था—

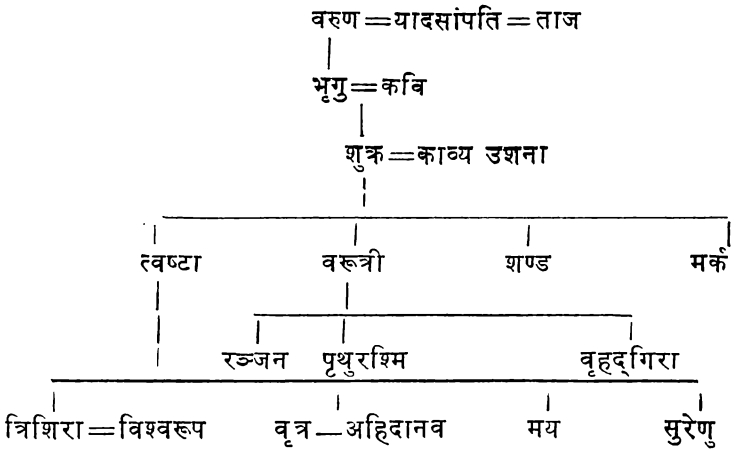

वर्तमान अरब, इराक, ईरान के निवासी वरुण के वंशज हैं। अरब अपना मूलपुरुष ताज को मानते हैं। यह 'ताज' शब्द 'याद' (यादसांपति) का विकृतरूप है। 'यातु' या 'याद' का ही एकरूप 'जादू' है। अरबों का मूलवेद भृग्वाङ्गिरसवेद (अथर्ववेद) था। इसी को छन्दोवेद कहते थे जिसका विकृतरूप ईरानियों का धर्मग्रन्थ जेन्दा (छन्दः) अवेस्ता (वेद) है। अरबों के धर्मग्रन्थ कुरान पर भी अथर्ववेद का पर्याप्त प्रभाव है। अरबों को ही गन्धर्व कहते थे, इनकी स्त्रियाँ

अप्सरा कहलाती थीं, इनका (गन्धर्वों, वरुण और अप्सरा) का सम्बन्ध अश्व और जल या समुद्र से अधिक था इसलिये वरुण को 'यादसांपति' कहते थे, स्त्रियाँ जल में तैरती थीं, और उनको अप्सरा (अप्सु सरन्ति) कहते थे। गन्धर्वों या अरबदेश के अश्व प्रसिद्ध हैं ही, यह इनका प्रमुख वाहन था।

वरुण अथर्ववेद का प्रवर्तक या मूलोपदेष्टा था—

"...वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विशस्तऽइमेऽआसतऽ इति युवानः शोभना उपसमेता भवन्ति तानुपदिशत्यथर्वाणो वेदः...।"

(शत० १३।५।३।७)

"अदितिपुत्र वरुण राजा है। गन्धर्व उसकी प्रजायें हैं। वे सुन्दर वेशभूषा में एकत्रित होती हैं और उनके लिए अथर्ववेद का उपदेश होता है।"

अथर्वा संभवतः भृगु का ही नाम था, अथर्वा के समकालीन अङ्गिरस् ऋषि थे, अथर्वा और अङ्गिरा ही भृग्वाङ्गिरसवेद या अथर्ववेद के मूल प्रवर्तक थे, यही मूलवेद था, जो ऋग्वेद से भी प्राचीनतर था, इसीलिए इसको छन्दोवेद भी कहते थे, जेन्दावेस्ता और कुरान इसी छन्दोवेद के विकृतरूप हैं यह पहिले ही बताया जा चुका है।

वरुण, भृगु, अङ्गिरा के अनन्तर त्वष्टा, विश्वरूप त्रिशिरा, उशना काव्य, शण्डामर्क और वसिष्ठ मैत्रावरुणि ने अथर्ववेद का प्रचलन किया। अथर्ववेद का और पल्लवन किया। अथर्ववेद और अवेस्ता के अधिकांश मन्त्र इन्हीं ऋषियों द्वारा रचित हैं। वरुण के पुत्र एवं भृगु के भ्राता होने के कारण वसिष्ठ का सम्बन्ध भी असुरों एवं अथर्ववेद से था। मल्लिनाथ तक को यह तथ्य ज्ञात था कि अथर्व वेद का मन्त्रोद्धार वसिष्ठ ने किया—

"अथर्वणस्तु मन्त्रोद्धारो वसिष्ठकृत इत्यागमः।" (किरातार्जुनीय टीका १०।१०)

वरुण का साम्राज्य वरुणालय कहलाता था, यह अरबसागर और हिन्दमहासागर के द्वीपसमूह थे। मैसोपोटामिया में एलम की राजधानी 'सुशन' का उल्लेख मत्स्यपुराण में इस प्रकार है—

'सुषानाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः।'

भृगु—(वारुणि भृगु)—वरुण के प्रथम और ज्येष्ठपुत्र अथर्वा या भृगु थे। ये ही इस वेद के प्रवर्तक थे, अतः उसके छन्दोवेद, अथर्ववेद, भृगुवेद, भृग्वाङ्गिरसवेद या ब्रह्मवेद इत्यादि नाम है। भृगु को विद्वान् होने के कारण

'कवि' भी कहा जाता था, इसीलिये इनके प्रधानपुत्र शुक्राचार्य को 'उशनाकाव्य' कहते थे। वरुण और भृगु के वंशज ईरान, ईराक, अरब देशों एवं योरोप में बस गये। असुरों के पुरोहित प्रायेण भार्गव ब्राह्मण होते थे।

भृगु, मरीचि आदि आठ आदिम ऋषि द्वितीय जन्म में वरुण के मानस पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुये—

देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्।
ब्रह्मणो जुह्वतः शुक्रमग्नौ पूर्वं प्रजेप्सया॥
ऋषयो जज्ञिरे पूर्वं द्वितीयमिति नः श्रुतम्॥
भृगुरङ्गिरा मरीचिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
अत्रिश्च वसिष्ठश्चाष्टौ ते ब्रह्मणः सुताः॥

(वायुपुराण ४७।२१।२२)

भृगु के सम्बन्ध में महाभारत में लिखा है—

भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयम्भुवा।
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम्॥ (म० १।५।७)

भृगु, मरीचि आदि को वरुण आदित्य के पुत्र मानना एक जटिल ऐतिहासिक समस्या है। महाभारतकालीन इतिहासविदों को भी यह समस्या स्पष्ट नहीं थी। इसीलिये उन्होंने लिखा है 'नः श्रुतम्', 'हमने सुना है।' उनको भी वास्तविकता का ज्ञान नहीं था, क्योंकि भृगु, मरीचि, दक्षादि दश प्रचेताओं के दश पुत्र (दश विश्वसृज् = प्रजापति) थे। मरीचि के पुत्र थे कश्यप और कश्यप के पुत्र थे वरुण। अतः वरुण के पितामह मरीचि तथा भृगु, वरुण के पुत्र कैसे हो गये, यह एक जटिल समस्या है। वरुण को 'प्रचेता' भी कहते हैं। इस नामसाम्य के कारण भी

---

(१) उशनाकाव्य (शुक्राचार्य) के दो पुत्र षण्ड और मर्क असुरों के प्रधान पुरोहित थे—

षण्डामर्कौ वा असुराणां पुराहिता आस्ताम् (मै, सं. ४।६।३)

दानवमर्क के नाम से योरोप का वर्तमान 'डेनमार्क' (Denmark) और 'षण्ड दानव' के नाम से 'स्केण्डेनेविया (Scandinavia) देश प्रसिद्ध हुये। 'दैत्य' शब्द के अनेक रूप 'ड़च' डीट्श, टीटन स्वीडन आदि योरोप में प्रचलित हुये, स्पष्ट है कि षण्डमर्क के समय से ही योरोप में दानव बस गये थे।

भ्रम उत्पन्न हो सकता है, क्योंकि नामसाम्य इतिहास में भ्रम का प्रधान कारण होता है। भार्गव ब्राह्मण अपने को 'प्राचेतस' भी कहते थे, क्योंकि उनके मूलवंश प्रवर्तक 'प्रचेता' ही थे। भार्गव वाल्मीकि स्वयं अपने को प्राचेतस कहते हैं—

"प्राचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।" (वा० रा० ७।९६।१९)

अतः भृगु, वरुण और प्रचेता की जटिल समस्या पर विस्तृत विवेचन अन्यत्र किया जायेगा। परन्तु इतना तो स्पष्ट है, जैसा कि पुराणों में भी लिखा है कि भृगु द्वितीय या दूसरे जन्म में ही वरुण के पुत्र थे[1], आद्य भृगु, आदिवरुण से शतियों पूर्व हो चुके थे।

यह पहिले ही बताया जा चुका है कि भृगु अथर्ववेद एवं पौरोहित्यकर्म के प्रवर्तक प्रधान आचार्य थे। इसीलिए गीता में लिखा है—

'महर्षीणां भृगुरहम्'। (१०।२५)

वेदों एवं पुराणों के निर्माण में भृग्वङ्गिरस ऋषियों का प्रधानयोग था—

'ते वा एते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपन्।'

(छान्दोग्य० ३।४।१।२)

"ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदिहासपुराणमभ्यवदन्।"

(न्यायभाष्य ४।१।६२)

भृगु, अङ्गिरा और अथर्वा के परस्पर सम्बन्ध के विषय में मत्स्यपुराण में लिखा है—

"भृगोः प्राजायताथर्वा
ह्यङ्गिराऽथर्वणः स्मृतः।"

'भृगु से अथर्वा उत्पन्न हुये और अङ्गिरा अथर्वा के पुत्र थे।'

अथर्वा दैव—बृहदारण्यकोपनिषद् (२।६।३) में अथर्वा को 'देव' का पुत्र बताया गया है, अतः 'देव' का पुत्र होने से उनका विशेषण हुआ 'अथर्वादैव' वायु पुराण के निम्न वाक्य में वरुण की संज्ञा 'महान्देव' है—

'देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्।' (४७।२१)

---

(१) वैदिकब्राह्मणग्रन्थों में भी भृगु को वरुण का पुत्र बतलाया गया है—
यथा शत० ब्रा० में (भृगुर्ह वैँ वारुणिः। वरुणं पितरं विद्ययातिमेने।"
(११।६।१।१), ऐतरेयब्राह्मण में—
'तं वरुणो न्यगृह्णीत। तस्मात् स भृगुर्वारुणिः। (१।१३।१०)
जैमिनीयब्राह्मण में भृगु को षडङ्गवेदविद् कहा है—
"भृगुर्ह वारुणिः अनूचान आस।" (१।४२)

वरुण को ब्रह्मा भी कहते थे, इन दोनों शब्दों का अर्थ है 'बड़ा' या 'वरिष्ठ'। कश्यप के द्वादश आदित्य पुत्रों में 'वरुण' सबसे 'बड़े' (ज्येष्ठ) पुत्र थे, और देवों में 'प्रथम' थे। मुण्डकोपनिषद् में भी यही बात कही गई है—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥ (मु० १।१)

वरुण ब्रह्मा जल और भूमि दोनों का अधिपति था। बाइबिल में भी इसे 'देव' (Diety देवता) कहा गया है—(The next act of the Diety was to make a division. This operation devided the water into two parts as well as into two states)—(Genesis)

बाइबिल के कथन की पुष्टि भारतीय साहित्य से भी होती है। पुराणों में 'वरुण' द्वादश देवों में 'प्रथमदेव' हैं तथा वेद और अवेस्ता में उसे 'अहुरमजदा' 'असुर महान्' कहा गया है 'असुर' और 'देव' शब्द पूर्वकाल में पर्यायवाची थे और असुरों को 'पूर्वदेव' कहा भी जाता था। 'वरुण' कश्यप का प्रथम पुत्र था, जिसे 'देव' और 'असुर' दोनों ही कहा गया, अतः 'अथर्वादैव' का अर्थ हुआ कि अथर्वा 'वरुण' (देव) के पुत्र (ज्येष्ठपुत्र) थे। ये ही अथर्वा 'छन्दोवेद' के मूल प्रवर्तक थे, जिससे उसकी संज्ञा हुई 'अथर्ववेद'। परन्तु 'अथर्वा ऋषि' का स्पष्ट इतिहास अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। परन्तु यह स्पष्ट है कि अथर्वा ऋषि वेद के प्रवर्तक एवं प्राचीनतम वेदाचार्य थे।

दध्यङ्ङाथर्वण (दधीचि)—दैव अथर्वा के पुत्र एवं शिष्य थे—दध्यङ्ङाथर्वण जिनको पुराणों में 'दधीचि' नाम से स्मृत किया है। ये वेद की मधुविद्या के प्रवर्तक आचार्यों में से प्रधान थे। दध्यङ् आथर्वण ने मधुविद्या का उपदेश अश्विनीकुमारों को दिया, वे दोनों ऋषि के प्रधानशिष्य हुये। यह कथा बृहद्देवता ग्रन्थ में इस प्रकार है[1]—

---

(१) ऋग्वेद (१।११६।१२) में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है—

"दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रदीयमुवाच।"

शतपथब्राह्मण (१४।१।१।२३) में मधुप्रदान की यह आख्यायिका मिलती है—वहाँ दो ऋचायें भी उद्धृत की हैं—

"इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच। तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्—

तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्नवृष्टिम् दध्यङ् ह मन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रदीयमुवाचेति॥

आथर्वणायश्विनौ दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।

स वां मधु प्रवोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपि कक्ष्यं वामिति॥

प्रादाद् ब्रह्मापि सुप्रीतः सुताय तदथर्वणः ।
स चाभवदृषिस्तेन ब्रह्मणा दीप्तिमत्तरः ॥
तमृषिं निषिषेधेन्द्रो मैवं वोच कचिन्मधु ।
न हि प्रोक्ते मधुन्यस्मिन्जीवन्तं त्वोत्सृजाम्यहम् ।
तमृषि त्वश्विनौ देवौ विविक्ते मध्वयाचताम् ।
स च ताभ्यां तदाचष्टे यदुवाच शचीपतिः ।
तमब्रूतां तु नासत्यव् आश्व्येन शिरसाभवान् ।
मध्वाशु ग्राहयत्वावां मेन्द्रश्च त्वा वधीत्ततः ॥
आश्व्येन शिरसा तौ तु दध्यङ्ङाह यदश्विनौ ।
तदस्येन्द्रोऽहरत्स्वं तन्यधत्तामस्य यच्छिरः । (बृ० ३।१८-२२)

"इन्द्र ने अथर्वा के पुत्र दध्यङ् को यह मधुब्रह्म (वेद) प्रदान किया, इस ब्रह्म द्वारा दध्यङ् ऋषि प्रदीप्ततर हो गए । इन्द्र ने ऋषि को चेतावनी देते हुए कहा कि 'इस मधुविद्या का कहीं भी चर्चा मत करना, इसके प्रवचन करते ही मैं तुम्हें मार डालूंगा । देव अश्विनीकुमारों ने ऋषि से एकान्त में मधु का उपदेश देने को कहा । दध्यङ् ने कुमारों को इन्द्र की प्रतिज्ञा बताई । नासत्यों ने ऋषि से कहा 'आप हम दोनों को शीघ्र अश्वशिर धारण करके मधुविद्या प्रदान करें, जिससे कि इन्द्र आप का वध नहीं कर सकें । तब अश्वशिर द्वारा दध्यङ् ने अश्विद्वय को मधुरहस्य बताया । इन्द्र ने ऋषि के शिर को काट दिया । परन्तु अश्विनों ने पुनः ऋषि के शिर को स्थापित कर दिया ।"

उशना काव्य—तृतीय वेदव्यास—इनकी 'कवि' संज्ञा विद्वान् होने के कारण और 'काव्य' संज्ञा कवि (भृगु) सुत होने के कारण प्रथित थी । ये विद्वानों या कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे—

'कवीनामुशना कविः ।' (गीता १०।३७)

असुरों के ये परमपूज्य पुरोहित, वेदाचार्य, मन्त्री एवं राजा थे । ईरानी और बैबीलन के असुर इनको अपना पुरोहित मानते थे ।[1]

ये अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण शुक्र कहे जाते थे, इनकी तेजस्विता के कारण सौरमण्डल के चमकीले ग्रह को 'शुक्र' संज्ञा प्राप्त हुई । शुक्राचार्य कामशास्त्र के प्रवर्तक भी थे, अतः शुक्रग्रह विवाह या 'काम' का देवता माना गया । वेद में इसको 'वेन' भी कहते हैं, जो योरोपीय भाषाओं में Venus कहा जाता है, यह

(1) Sukhur, a priest of the Babylon (Journal of Oriental of researches, p. 90, Madras, 1931).

वेन देवता भी सौन्दर्य का देवता है। अँग्रेजी में Friday शब्द में Fri प्रेम या प्यार (प्रिय=Fry) का अपभ्रंश है, इन सबका तात्पर्य एक ही है। उशना शब्द का अर्थ भी इच्छा या प्रेम है।

दैत्यों और दानवों के परमगुरु एवं सर्वोच्च पुरोहित शुक्राचार्य प्रसिद्धतम वेदाचार्य थे। वैदिकग्रन्थों में इनका उल्लेख प्रायः 'उशनाकाव्य' के नाम से मिलता है

बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद्। उशना काव्योऽसुराणाम्।
(जैमिनीयब्राह्मण १।१२५)

'काव्य उशना' को भृगुओं का राजा बनाया गया—

'भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येभ्यषेचयत्।' (वायुपुराण ७०।४)

ईरानीग्रन्थों में भी कवि उशना को राजा कहा गया है, अवेस्ता में 'कवि उसा' शब्द स्मृत है। यह पहिले ही बताया जा चुका है कि अथर्वा और शुक्राचार्य ही अथर्ववेद या छन्दोवेद के प्रधान प्रवर्तक थे। छन्दोवेद का विकृतरूप ही पारसी धर्मग्रन्थ जेन्दावेस्ता है।

इतिहासपुराणों में शुक्राचार्य अनेक दैत्येन्द्रों एवं दानवेन्द्रों के पुरोहित के रूप में वर्णित हैं। शुक्र की पुत्री देवयानी सम्राट् ययाति को ब्याही थी। असुरेन्द्र वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ययाति की द्वितीयपत्नी थी। देययानी के भड़काने पर शुक्राचार्य ने ययाति को बूढ़े होने का शाप दिया था। यह सब कथा पुराणों में मिलती है।

अथर्ववेद के मन्त्रों की रचना के अतिरिक्त उशनाकाव्य (तृतीयव्यास) ने अन्य बहुत से शास्त्रों की रचना की थी, जिनमें से कम से कम चार प्रसिद्ध हैं—

औशनस-अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद और औशनसपुराण।

उशना शुक्र को तृतीयव्यास इसीलिये माना गया कि उन्होंने मूलवेद (छन्दोवेद=अथर्ववेद) का निर्माण किया एवं इतिहासपुराणआदि शास्त्र रचे। उशनाप्रणीत औशनस अर्थशास्त्र प्राचीनकाल में अत्यन्त प्रसिद्ध था, इसका उल्लेख महाभारत एवं कौटिलीय अर्थशास्त्र में मिलता है।

उशना दीर्घजीवी ऋषि थे। दैत्येन्द्र प्रह्लाद से ययाति तक उनका अस्तित्व मिलता है। तृतीय त्रेता से अष्टमयुग अर्थात् प्रायः दो सहस्रवर्ष पर्यन्त वे जीवित रहे। प्र[illegible]युग में उनके एवं बलि के नेतृत्व में शण्डामर्कादि के साथ असुरों ने योरोप बसाया—

वलिसंस्थेषु लोकेषुत्रेतायां सप्तमे युगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ।। (वा० पु०)

चतुर्थव्यास—बृहस्पति—अङ्गिरा ऋषि आथर्वणवंश में ही उत्पन्न हुये। अङ्गिरा के वंशज देवों और भारतीय क्षत्रियों के पुरोहित बने, इनमें बृहस्पति, उतथ्य, सुधन्वा, ऋभु, वाज, भरद्वाज, दीर्घतमा(गौतम)मामतेय, इत्यादि प्राचीनतम वैदिक ऋषि थे। देवासुरयुग में भार्गवकुल और आंङ्गिरसकुल – ये दो प्रधान ब्राह्मणकुल थे, भार्गव और आङ्गिरसकुल—ये दो ब्राह्मणकुल प्रधान थे। बृहस्पति इन्द्रादि देवों के पुरोहित और मन्त्री थे—

'बृहस्पतिर्वा आङ्गिरसः देवानां ब्रह्मा,' (गोपथ ३।१)
'बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद् ,' (जै० ब्रा० १।१२५)

उस समय पुरोहित ही राजा का प्रधानमन्त्री होता था, अतः बृहस्पति देवों के प्रधानमन्त्री थे। पुराणों में चतुर्थयुग में आङ्गिरस (बृहस्पति) को चतुर्थव्यास कहा गया है—

चतुर्थे द्वापरे चैव व्यासोऽङ्गिरा स्मृतः ।

यहाँ 'अङ्गिरा' से तात्पर्य आङ्गिरस बृहस्पति से ही है। वेद और अथर्ववेद के निर्माण में आङ्गिरस बृहस्पति का भी उशना के समान ही योगदान था, इसीलिए उसको अथर्वाङ्गिरसवेद या भृग्वङ्गिरसवेद कहते थे। इसी प्रकार इतिहास पुराण भी देवयुग में अथर्वाङ्गिरस ऋषियों ने रचे थे। २८ व्यासों में निम्नलिखित अथर्वाङ्गिरस थे—(१) उशना, (२) बृहस्पति, (३) सारस्वत (अपान्तरतमा, (४) शरद्वान् , (५) भरद्वाज, (६) गौतम (दीर्घतमा), (७) वाजश्रवा, (८)वसिष्ठ, (९) शक्ति, (१०) पराशर, (११) ऋक्ष=वाल्मीकि, (१२) द्वैपायन।

वेदमन्त्रों के साथ बृहस्पति ने अनेकशास्त्रों की रचना की, इनमें से बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का प्राचीन वाङ्मय में बहुधा उल्लेख मिलता है- व्यास (महाभारत), कौटिल्य (अर्थशास्त्र), पुराण एवं नाटककार भास ने बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का उल्लेख किया है, प्राचीनतम प्रमाण महाभारत का द्रष्टव्य हैं—

बार्हस्पत्ये च शास्त्रे च श्लोकोऽयं नियतः प्रभो । (शान्तिपर्व ५५।३८)

बृहस्पतिरचित 'आङ्गिरसपुराण' इस समय अनुपलब्ध है। बृहस्पति का प्रमुख कार्यकाल चतुर्थत्रेतायुग था, परन्तु ये सप्तम त्रेतायुग तक अवश्य जीवित थे जबकि वामन विष्णु ने दैत्येन्द्र बलि को पाताल (योरोप) भेजा।

विवस्वान् (सूर्य), पञ्चम वेदव्यास—इस समय यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय मिलते हैं—शुक्ल और कृष्ण। शुक्लयजुर्वेद मूलप्रवर्तक पञ्चम व्यास अदितिपुत्र विवस्वान् थे। कश्यप के द्वादश देवपुत्रों में वरुण के अनन्तर विवस्वान् ही ज्येष्ठ

एवं तेजस्वितम थे। इन्हीं के नाम से नक्षत्र सूर्य की संज्ञा विवस्वान् हुई, अतः यहाँ पर विवस्वान् या सूर्य आदित्य से (अदितिपुत्र) कश्यप के ऐतिहासिकपुत्र का अभिप्रायः है। विवस्वान् की पत्नी, त्वष्टा की पुत्री संज्ञा या सुरेणु थी, उनसे इनके दो पुत्र हुए वैवस्वत यम और वैवस्वत मनु। सुरेणु की छाया (दासी=अश्वी) से सूर्य ने अश्विनीकुमारों को उत्पन्न किया। यम की भगिनी यमी थी। ये सभी वेदमन्त्रों के द्रष्टा हुए हैं।

यम के पिता विवस्वान् आदित्य ने देवयुग में शुक्लयजुर्वेद का प्रवचन किया, इसीलिए विवस्वान् को पञ्चम वेदव्यास कहा गया। द्वापर के अन्त में शिष्यपरम्परा द्वारा वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने ये शुक्लयजुर्वेद उद्दालक ऋषि से पढ़ा, जो इस समय उपलब्ध है। पुराणों में इस सम्बन्ध में एक आख्यायिका मिलती है जो कि आंशिक रूप से ही सत्य है, तदनुसार वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने द्वापरान्त में व्यासशिष्य वैशम्पायन से तैत्तिरीयश्रुति (कृष्णयजुर्वेद) का अध्ययन किया। किसी कारण गुरुशिष्य में विवाद हो गया, जिससे याज्ञवल्क्य ने कृष्णयजुर्वेद का परित्याग कर सूर्य की उपासना करके शुक्लयजुर्वेद प्राप्त किया। यहां पर पुराणों में कहा गया है कि घोड़े के रूप धारण करके (वाजिरूपधृक्) सूर्य ने याज्ञवल्क्य को शुक्लयजुषः का उपदेश दिया, यह सब कल्पना है। महाभारत में स्वयं याज्ञवल्क्य कहते हैं कि 'मैंने आर्षविधि से आदित्यशुक्लयजुः प्राप्त किए—अर्थात् गुरु उद्दालक से वे पढ़े—

यथाऽऽर्षेयेणेह विधिना चरताऽवनतेन ह।
मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप॥ (महा० १२।३१८।२)

इस श्लोक में 'आदित्याद् के स्थान पर 'आदित्यानि' पाठ शुद्ध है, इसकी पुष्टि शतपथ या बृहदारण्यकोपनिषद् के निम्न वाक्य से होती है—

'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते।'

अतः शुक्लयजुर्वेद अर्वाक्कालिक नहीं है, वह भी अथर्ववेद या कृष्णयजुर्वेद के समान प्राचीन है। शुक्लयजुर्वेद का मूल प्रवक्ता विवस्वान् आदित्य था, जो पञ्चमयुग[1] में पञ्चम वेदव्यास हुआ। आदित्य विवस्वान् की शिष्यपरम्परा का संकेत वासुदेवकृष्ण ने गीता[2] (४।१) में किया है।

शतपथब्राह्मण[3] में विवस्वान् आदित्य की शिष्यपरम्परा इस प्रकार दी हुई है—

---

(१) पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा। (वायु० पु० २३)

(२) इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

(३) श० ब्रा० (१४।६।४।३३)

(१) आदित्य
|
(२) अम्भिणी वाक् (सरस्वती)
|
(३) नैध्रुवि काश्यप
|
(४) शिल्प काश्यप
|
(५) हरित काश्यप
|
(६) वार्षगणोऽसित
|
(७) वाध्योग जिह्वावान्
|
(८) वाजश्रवा (बाइसवाँ व्यास)
|
(९) कुश्रि
|
(१०) उपवेशि
|
(११) अरुण
|
(१२) उद्दालक
|
(१३) याज्ञवल्क्य

प्रतीत होता है यह शिष्यपरम्परा पूरी नहीं है, केवल प्रधान वेदाचार्यों के नाम ही यहाँ उल्लिखित हैं। वाजसनेय याज्ञवल्क्य का विस्तृत परिचय आगे लिखा जायेगा। इस प्रकरण में विवस्वान् के प्रसङ्ग मे यह चर्चा हुई।

षष्ठ वेदव्यास वैवस्वतयम—पुरांणों के अनुसार मृत्युदेव वैवस्वत यम छठे युग में षष्ठ वेदव्यास थे—

"परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा प्रभुः।"

यम का चाचा, विवस्वान् का अनुज इन्द्र, जो सप्तम युग में व्यास हुआ, आयु में अपने भतीजे यम से बहुत छोटा था। इन्द्र, यम का शिष्य था। यम का जन्म और कार्यकाल षष्ठयुग, अर्थात् इन्द्र से ३६० वर्ष पूर्व था और इन्द्र का कार्यकाल (वेदरचना) सप्तमयुग में हुआ। इन्द्र, विरोचन और बलि के तुल्यवयः और समकालीन था। इन्द्र (वेदाचार्य) का वृतान्त आगे लिखेंगे।

ईरानी साहित्य में वैवस्वत यम को 'यिम खिस्त औस्त' और विवस्वान् को विवह्वन्त कहते हैं। 'जमशेद' शब्द भी 'यम वैवस्वत' का ही एक भ्रष्टरूप है।

स्पष्ट है कि वरुण की भांति यम का भी ईरान से अधिक सम्बन्ध था। वह उस लोक का राजा था।[1] मनु भारतवर्ष का राजा था। यम पितरदेश का राजा था।[2] यह पितृदेश ईरान ही था। ईरानीग्रन्थों में यम को वृत्रासुर (अहिदाहक) का पूर्ववर्ती शासक माना है। पाश्चात्यलेखक उसको माइथोलोजी कहते हैं। भारतीयों और ईरानियों के लिए वह इतिहास है। स्पष्ट है यम वैवस्वत ने छन्दोवेद (अथर्ववेद) के मन्त्रों की रचना की। निश्चय ही प्राचीनकाल में यमरचित कोई वेदसंहिता थी, जिससे यम को षष्ठ व्यास माना गया। इस समय ऋग्वेद में यम और उसके वंशज शंखयामायन, दमनयामायन, देवश्रवायामायन, संकुसुक यामायन, मथितयामायन के सूक्त दशममण्डल में मिलते हैं।

इन्द्र—सप्तमयुगीन व्यास—कश्यपपुत्रदेवराज इन्द्र का वास्तविकनाम आज क्या पूर्वकाल में भी अज्ञात ही रहा। 'इन्द्र' पद के ३२ से अधिक अर्थ ब्राह्मणग्रन्थों[4], निरुक्त[5] और बृहद्देवता[6] में बतलाये गए हैं। इनमें एक अर्थ 'अग्नि' भी है। स्वयं देवराज के पिता प्रजापति कश्यप ने अग्नि की स्तुति 'इन्द्र' और 'जातवेदाः' नाम से की थी। अतः 'अग्नि' के समान तेजस्वी होने के कारण ही कश्यप या लोक ने देवराज को 'इन्द्र' कहा, वैसे यह पद वेद और लोक में, उसके जन्म से सहस्रोंवर्षपूर्व भी प्रचलित था। इन्द्र का अर्थ परमात्मा, आत्मा या इन्द्रिय भी होता है। पाणिनि का यह सूत्र इन्द्र और इन्द्रिय की महत्ता को बतला रहा है—

"इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तम्"
(अष्टाध्यायी ५।२।९३)

---

(१) स वाव विवस्वानादित्यो यस्य मनुश्च यमश्च।
मनुरेवास्मिल्लोके यमोऽमुष्मिन्। (मैत्रायणीसंहिता १।७।३२)

(२) यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशः'; (श० ब्रा० १३।४।३।७)
तुलनीय—'वैवस्वतं पितृणां च यमं राज्येऽभ्यषेचयत्'। (वा० पु० ७०।८)

(३) इन्धो ह वै नामैष योऽयं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तं वा एतमिन्धं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते...देवाः (बृ० उ० ४।२।२)

(४) इन्द्र इरां दृणातीति वा...इन्धे भूतानीति वा। (नि १०।१।८)

(५) चतुर्विधानां भूतानां प्राणो भूत्वा व्यवस्थितः।
ईष्टे चैवास्य सर्वस्य तेनेन्द्र इति स्मृतः॥ (बृहद्देवता २।३५)

65.51.6

यह तो 'इन्द्र' पद की नैरुक्तिक व्याख्या हुई, अब ऐतिहासिक इन्द्र का परिचय लिखते हैं, जो वेदों में छाया हुआ है और सप्तमयुग में उसने स्वयं वेदों की सर्जना की।

इन्द्र द्वादश आदित्यों में छोटा यानी अवर था—

'प्रजापतिरिन्द्रमसृजत—आनुजावरं देवानाम्।' (तै. सं २।२।१०)

'प्रजापति' (कश्यप) ने इन्द्र को उत्पन्न किया, जो देवों में अवर (उत्तरकालीन) था। विष्णु को छोड़कर इन्द्र आदित्यों में सबसे छोटा था। वरुण और विवस्वान् ही नहीं उनके वंशज भृगु, यमादि इन्द्र से शतियों पूर्व हो चुके थे। वैवस्वत यम ने इन्द्र को वेद और इतिहासपुराण पढ़ाये थे। इन्द्र के चार किंवा पाँच गुरु थे—पिता कश्यप, बृहस्पति, अश्विनीकुमार, यम और कौशिक विश्वामित्र।

इन्द्र १०१ वर्ष पर्यन्त पिता कश्यप के पास ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुये वेदविद्या पढ़ता रहा।[1] जब देवगण १०१ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहते हुए वेद पढ़ते थे, तो उनकी आयु निश्चय ही हजारों वर्ष होनी चाहिए। इन्द्र प्रारम्भ से ही ब्राह्मण था—

"तानिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाणः" (मै. सं १।६।६),

महाभारत में लिखा है—

इन्द्रो वै ब्रह्मणः पुत्रः कर्मणा क्षत्रियोऽभवत्[2]

इन्द्र दीर्घकाल तक ब्राह्मण ही रहा, वह पुरोहित बनकर असुरों के यज्ञ कराया करता था[3] और वेदव्याख्यान करता था।[4] जीवन के मध्यकाल में वह क्षत्रिय हो गया और ९९ युद्ध तथा १२ देवासुरसंग्राम लड़े। जीवन के अन्त में वह पुनः ब्राह्मण (आचार्य) हो गया, जबकि वह रोहिताश्व (हरिश्चन्द्रपुत्र) एवं भारद्वाज को उपदेश देता है—

"भरद्वाजो ह त्रिभिरायुर्भिर्ब्रह्मचर्यमुवास। तं ह जीर्णं स्थविरं शयानम् इन्द्र उपव्रज्योवाच।" (तै० ब्रा० ३।१०।११।४५)

---

(१) "एकशतं ह वै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास।"
(छा. उ. ८।११।३)

(२) महा० शान्ति० २२।११;

(३) कालकाञ्जा वा असुरा इष्टका अचिन्वत।...तानिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाणः। उपैत स एतामिष्टकामप्युपाधत्त। (मै. सं. १।६।६)

(४) इन्द्रं प्रत्यक्षमपश्यत्। स एनमब्रवीद्—ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि।
(ताण्डयब्रा० १५।१।२५)

"भरद्वाज तीन आयु (३०० वर्ष) ब्रह्मचारी रहे। जीर्ण, स्थविर सोते हुए भरद्वाज के पास आकर इन्द्र बोला।" भरद्वाज ने आयुर्वेदविद्या इन्द्र से सीखी—

स शक्रभवनं गत्वा सुर्षिगणमध्यगम्।
ददर्श बलहन्तारं दीप्यमानमिवानलम् (चरकसं. १।२०)

इन्द्र ने आयुर्वेद अश्विनीकुमारों से सीखा था।

इन्द्र जन्म से विद्वान् ब्राह्मण था। वह ऋषि बन गया। उसने मन्त्र, ब्राह्मणग्रन्थ और अनेक शास्त्रों की रचना की, जिससे वह सप्तमयुग का 'व्यास' कहलाया। उसने प्रमुखतः निम्न शास्त्रों का प्रणयन किया—

(१) मन्त्र (वेद)
(२) ब्राह्मणग्रन्थ
(३) इतिहासपुराण
(४) व्याकरणशास्त्र
(५) आयुर्वेद
(६) अर्थशास्त्र
(७) मीमांसाशास्त्र
(८) गाथा
(९) छन्दःशास्त्र
(१०) ब्रह्मविद्या (उपनिषद्)[1]

विश्वामित्र और भरद्वाज से ऋषि इन्द्र के शिष्य थे। ब्राह्मण इन्द्र ने कौशिक विश्वामित्र को वेद पढ़ाया। परन्तु युद्ध करते हुए इन्द्र वेदों को भूल गया, पुनः उसने विश्वामित्र से वेद पढ़ा—

'तान् ह विश्वामित्राद् अधिजगे। ततो हैव कौशिक ऊचे"

(जै. ब्रा. २।७९)

कौशिक का शिष्य होने से इन्द्र का एक नाम 'कौशिक' भी प्रसिद्ध हुआ। वर्तमान ब्राह्मणग्रन्थों से ही ज्ञात होता है कि इन्द्र ने वसिष्ठादि ऋषियों के लिए ब्राह्मण-ग्रन्थों का प्रवचन किया। इतिहासपुराणों से ज्ञात होता है कि 'व्यास' के रूप में उसने पुराण की भी रचना की। वैयाकरण सम्प्रदाय में 'ऐन्द्रव्याकरण' प्रसिद्ध है, जो इस समय अनुपलब्ध है।

इन्द्र ने अनेक असुरों का वध किया, यह उसका क्षत्रिय जीवन था, जिस

(१) द्रष्टव्य—संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृ. ६३, पं युधिष्ठिर मीमांसक-कृत)

यहाँ उल्लेख अनावश्यक है। वृत्रवध के पश्चात् ही इन्द्र की 'महेन्द्र'[1] संज्ञा प्रथित हुई।

इन्द्र ब्रह्मविद्या (उपनिषद्) में पारंगत था, विशेषतः छान्दोग्योपनिषद् के प्रामाण्य से यह सिद्ध है—

'तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामः

...इन्द्रो हैव देवानाममभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणाम्।[2]

वसिष्ठ—अष्टम व्यास—आदिम वसिष्ठ स्वायम्भुव मन्वन्तर में हुए थे। उनके वंशज को मित्रावरुण ने अपना मानसपुत्र बनाया, यह वसिष्ठ का द्वितीय जन्म था और इनकी प्रसिद्धि वसिष्ठ मैत्रावरुणि के नाम से हुई, ये ही वसिष्ठ वैवस्वत मनु के पुरोहित थे, शतपथब्राह्मण एवं इतिहासपुराणों में इसका वर्णन है। प्रारम्भ में वसिष्ठब्राह्मण भार्गवों के समान ईरानादि में असुरों का पौरोहित्यकर्म भी करते थे। शाकद्वीपीय ब्राह्मणों और वासिष्ठों का सम्बन्ध पुराणों से सिद्ध है। वासिष्ठ ब्राह्मण पीढ़ी दर पीढ़ी वैवस्वत मनु के वंशज अयोध्या के ऐश्वाक राजाओं के पुरोहित होते रहे। पुराणों के अध्ययन से ऐसा आभास होता है कि वसिष्ठ एक ही थे, परन्तु यह महान् भ्रम है, वसिष्ठ या वासिष्ठ एक गोत्र नाम था, ऐसे सहस्रों लाखों वसिष्ठ या वासिष्ठ ब्राह्मण हुए, यही बात कश्यप (काश्यप), पाराशर (पराशर), भरद्वाज (भारद्वाज), कौशिक (विश्वामित्र), गार्ग (गर्ग), गौतम, याज्ञवल्क्य, सारस्वत, आथर्वण, वात्स्यायन इत्यादि शतशः गोत्रनामों के साथ समझनी चाहिए। जिस प्रकार आज भी किसी कौशिक ब्राह्मण को विश्वामित्र समझना या किसी वशिष्ठ ब्राह्मण को दशरथ का पुरोहित समझना, महान् अज्ञान और असत्य होगा, इसी प्रकार हरिशचन्द्रकालीन वसिष्ठ-विश्वामित्र और रामकालीन वसिष्ठ विश्वामित्र को एक ही समझना महान् मूर्खता होगी, यह भ्रम नामसाम्य से होता है, वैसे तो स्वाभाविक है, परन्तु वास्तविकता को भी समझना चाहिए। इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रकाश्यमान ग्रन्थ—'पुराणों में इतिहासविवेक' में किया जाएगा।

अतः वसिष्ठद्वितीय या मैत्रावरुणि वसिष्ठ आठवें वेदव्यास थे, इनकी माता उर्वशी और भ्राता कुम्भज अगस्त्य ऋषि थे—

---

(१) "इन्द्रो वै वृत्रमहन्सोऽन्यान् देवानत्यमन्यत। स महेन्द्रोऽभवत्।"

(मैत्रा० सं. ५।६।८)

(२) छा० उ. (८।७।२)

तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाऽप्सरसमुर्वशीम् ।
रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे ।
तेनैव तु मुहुर्ते वीर्यवन्तौ तपस्विनौ ।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः ।। (बृहद्देवता ५।१४९-५०)

"प्रजापति वरुण के यज्ञ में दो अदितिपुत्रों—मित्र और वरुण का वीर्य कुम्भ में स्खलित हो गया, उर्वशी अप्सरा को देखकर। उसी क्षण उससे वीर्यवान् अगस्त्य और वशिष्ठ का जन्म हुआ।" वरुणपुत्र होने से वशिष्ठ को आथर्वणऋषि भी कहा जाता है। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने लिखा है—

"अथर्वणा वसिष्ठेन कृता रचिता पदानां पंक्तिरानुपूर्वी यस्य स वेद चतुर्थवेद इत्यर्थः। अथर्वणस्तु मन्त्रोद्धारो वसिष्ठकृत इत्यागमः" (किरातार्जुनीय टीका १०।१०)

अथर्ववेद का मन्त्रोद्धार करने के कारण वसिष्ठ मैत्रावरुणि 'अष्टमव्यास' माने गए।

वशिष्ठ का कुल अथर्वाङ्गिरस भी कहा जाता था। इसी वंश में शक्ति, पराशर और पाराशर्य व्यास हुए, जिन्होंने इतिहासपुराणों का निर्माण किया।

वसिष्ठ मैत्रावरुणि का समय १११८० वि. पू. था। अन्तिमव्यास कृष्ण-द्वैपायन का समय ३१०० वि. पू. था। अतः इन दोनों में आठ सहस्रवर्ष का अन्तर था। प्रत्येक ऋषि की आयु २०० वर्ष की हो तो भी अष्टम व्यास वसिष्ठ और अट्ठाइसवें पाराशर्य व्यास के मध्य न्यूनतम ४० पीढ़ियाँ अवश्य हुई, अतः द्वैपायन व्यास को आद्यवसिष्ठ का प्रपौत्र मानना भ्रान्ति है। वास्तव में कृष्णद्वैपायन के पूर्वज ही वासिष्ठ और पाराशर ब्राह्मण थे। पराशर ऋषि भी, जो शक्ति वासिष्ठ के पुत्र थे, कृष्णद्वैपायन से बीसियों पीढ़ी पूर्व, सौदास कल्माषपाद ऐक्ष्वाक के सम-कालीन थे। यह अयोध्या का राजा, दाशरथि राम से भी दस पीढ़ी पूर्व हुआ था। अतः कृष्णद्वैपायन के पिता भी आद्य पराशर नहीं थे, इनके पिता का नाम 'द्विप' (पराशर ब्राह्मण) था, 'द्विप' के पुत्र होने के कारण ये 'द्वैपायन' कहलाये, जैसा कि अपत्य नामकरण का नियम था। 'द्विप' ऋषि को पराशरगोत्रीय होने से ही 'पराशर' कहा जाता था, जैसा कि अन्य सैकड़ों ब्राह्मणों[1] को कहा जाता है।

यह सब इसलिए लिखा गया है कि महान् ऐतिहासिक भ्रम मिटे।

---

(१) कृष्णद्वैपायन ही एकमात्र पाराशर (या पाराशर्य) नहीं थे। ब्राह्मणग्रन्थों एवं इतिहासपुराणों में अनेक पाराशर्यों का उल्लेख मिलता है—यथा बृहदारण्यक (२।६।३) में चार पाराशर्यों का वर्णन है। महाभारत में कृष्णद्वैपायन के पूर्ववर्ती पञ्चशिखपाराशर्य भिक्षु का उल्लेख है।

सारस्वत=अपान्तरतमा=प्राचीनगर्भ (दाधीच आङ्गिरस)=

नवम व्यास :—अब एक ऐसे व्यास का वर्णन किया जाएगा, जिनकी कृतियां महाभारतकाल से पूर्व त्रेताद्वापर में उतनी ही प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण थीं जैसी कि आज पाराशर्य व्यास की ऋग्वेदादि (सम्पादित) कृतियाँ हैं ।[1]

पुराणों की व्याससूची में सर्वत्र सारस्वत व्यास का नवम स्थान है—

"परिवर्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा ।"

केवल विष्णुपुराण की पुराणप्रवक्तृपरम्परा पृथक् रही है --

(यह व्यासों की सूची नहीं पुराणप्रववक्ताओं की सूची है)—

इदमार्षं पुराणं प्राह ऋभवे कमलोद्भवः ।
ऋभुः प्रियव्रतायाह स च भागुरयेऽब्रवीत् ।।
भागुरिः स्तम्भमित्राय दधीचाय स चोक्तवान् ।
सारस्वताय तेनोक्तं भृगुःसारस्वतेन च ।।

(वि. पु. ६।८।४३-४४)

"इस आर्षपुराण (विष्णुपुराण) को सर्वप्रथम ब्रह्मा ने ऋभु (आङ्गिरस) को सुनाया, ऋभु ने प्रियव्रत को और प्रियव्रत ने भागुरि से कहा । पुनः भागुरि ने स्तम्भमित्र को, स्तम्भमित्र ने दधीचि को, उसने सारस्वत (अपने पुत्र) को और सारस्वत ने भृगु (भार्गव) को सुनाया ।

उपर्युक्त विष्णुपुराणश्लोकों को केवल इसीलिए उद्धृत किया है कि दधीचि (दध्यङ् आथर्वण) और सारस्वत का नैकट्य (सम्बन्ध) ज्ञात हो सके ।

दधीचि ऋषि और सरस्वती के विवाह का बाणभट्ट ने कादम्बरी के आरम्भ में विस्तार से वर्णन किया है, यह कोई काल्पनिक घटना नहीं, बाणभट्ट के ऐतिहासिक कथनकी पुष्टि अश्वघोष और महाभारत के कथनों से होती है, अश्वघोष ने लिखा है-

तथाङ्गिरा रागपरीतचेतः सरस्वतीं ब्रह्मसुतः सिषेवे
सारस्वतो यत्र सुतोऽस्य जज्ञे नष्टस्य वेदस्यपुनः प्रवक्ता ।।

(सौन्दरानन्द ७)

(१) पं० भगवद्दत्त ने 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास', प्रथम भाग अध्याय ८ में सारस्वत ऋषि का एवं अध्याय ९ में अपान्तरतमा का उल्लेख किया है, सारस्वत और अपान्तरतमा एक ही ऋषि का नाम था, इस ऐक्य को न समझ कर पण्डितजी लिखते हैं--"इन अट्ठाईस वेदप्रवचनों में अपान्तरतमा का नाम कहीं नहीं दिखाई देता । निश्चय ही वह वैवस्वत मनु से पूर्व स्वायम्भुव —अन्तर में वेदप्रवचन कर चुका था" (पृ. १०३) । वास्तव में सारस्वत और अपान्तरतमा एक ही थे, इस की पुष्टि ऊपर सप्रमाण की है ।

"कामराग से पीडित अङ्गिरा (आङ्गिरस दधीचि) ने सरस्वती की सेवा की (कामाचार किया)। सरस्वती का पुत्र सारस्वत उत्पन्न हुआ, जिसने नष्ट वेद का पुनः प्रवचन किया।"

अश्वघोष ने पुनः बुद्धचरित में भी इस ऐतिहासिक घटना का उल्लेख किया है—

सारस्वतश्चापि जगाद नष्टं वेदं पुनर्यं ददृशुर्नपूर्वे। (१।४२)

उपर्युक्त अङ्गिरा ऋषि प्रसिद्ध वैदिक ऋषि दध्यङ् आथर्वण या आङ्गिरस ऋषि थे, जिन्हें पुराणों में दधीचि कहा जाता हैं। ये ही अपान्तरतमा के पिता थे, इनकी माता का नाम महाभारत शल्यपर्व (अध्याय ५१) में अलम्बुषा या सरस्वती कहा है शतपथब्राह्मण में उल्लिखित आदित्य विवस्वान् की शिष्या वाक् अम्भिणी यही प्रतीत होती है। 'सरस्वती' और 'अम्भिणी' शब्द का एक ही अर्थ है—'जलवती'। इसी के नाम से नदी का नाम भी सरस्वती प्रसिद्ध हुआ। सरस्वतीतट पर ही अपान्तरतमा सारस्वत व्यास का आश्रम था।

महाभारत (शल्यपर्व, अ० ५१) से ज्ञात होता है कि वार्तघ्नदेवासुरसंग्राम के पश्चात् द्वादशवार्षिकी घोर अनावृष्टि[1] हुई। इस घोर अकाल में ऋषिगण क्षुत्पिपासा से पीडित होकर इतस्ततः भाग गए। साठ सहस्र ऋषिमुनि सरस्वती तट पर युवक सारस्वत व्यास के आश्रम में ही रहे। वे भूखेप्यासे ऋषिगण वेदों को भूल गए। यद्यपि सारस्वत व्यास युवक थे, परन्तु इन्होंने वृद्ध ऋषियों को वेद पढ़ाया और वेद पढ़ाते समय सारस्वत बूढ़े ऋषियों को 'पुत्र' कहकर सम्बोधित करते थे—

अध्यापयामास पितृञ्छिशुराङ्गिरस कविः।
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान्॥
ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः।
देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान्॥ (मनुस्मृति २।१५१-१५२)

"शिशु आङ्गिरस कवि सारस्वत ने अपने चाचा आदि को पढ़ाया और ज्ञान देकर कहा— हे! पुत्रों!" वे बूढ़े ऋषि क्रोध में भरकर इसका अर्थ देवों से पूछने गए। सभी देवों ने एकत्र होकर निर्णय दिया कि 'शिशु'[2] ने न्याय (उचित) ही कहा है।"

---

(१) अथ काले व्यतिक्रान्ते महत्यतिभयङ्करे।
अनावृष्टिरनुप्राप्ता राजन् द्वादशवार्षिकी॥ (शल्यपर्व ५१।३९)

(२) सारस्वत अपान्तरतमा का एक नाम ही 'शिशु' पड़ गया था, यथा द्रष्टव्य है—'शिशुर्वा आङ्गिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत्' (ताण्ड्यब्रा० १३।३।२४) "आङ्गिरस शिशु सारस्वत कवि मन्त्रकारों में श्रेष्ठतम था।" इनकी दृष्ट साम 'शैशवसाम' कहलाती थी। जैमिनीयब्राह्मण में भी शिशु आङ्गिरस और शैशवसाम का उल्लेख है।

अब महाभारत शान्तिपर्व (अध्याय ३४९) का महत्वपूर्ण वर्णन ध्यातव्य है। वहाँ अपान्तरतमा को पूर्वजन्म का कृष्णद्वैपायन व्यास कहा गया है—

अपान्तरतमा नाम सुतो वाक्संभवः प्रभुः।
भूतभव्यभविष्यज्ञः सत्यवादी दृढ़व्रतः॥
तमुवाच नतं मूर्ध्ना देवानामादिरव्ययः।
वेदाख्याने श्रुतिः कार्या त्वया मतिमतांवर।
तस्मात्कुरु यथाज्ञप्तं ममैतद्वचनं मुने।
तेन भिन्नास्तदा वेदा मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्यः स उच्यते।
प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन।
पुनस्तिष्ये च संप्राप्ते कुरवो नाम भारताः।
भविष्यन्ति महात्मानो राजानः प्रथिताभुवि।
तत्राऽप्यनेकधा वेदान् भेत्स्यसे तपसान्वितः।
कृष्णे युगे च संप्राप्ते कृष्णवर्णो भविष्यसि।

\+ + + + + +

सोऽहं तस्य प्रसादेन देवस्य हरिमेधसः।
अपान्तरतमा नाम जात आज्ञया हरेः॥
पुनश्च जातो विख्यातो वशिष्ठकुलनन्दनः॥

महाभारत के उक्त कथन की पुष्टि अहिर्बुन्ध्यसंहिता[1] और शंकराचार्य[2] के कथनों से भी होती है।

अतः अपान्तरतमा का कृतित्व कृष्णद्वैपायन के समान ही महत्वपूर्ण था।

सारस्वत व्यास के चार शिष्य थे—पाराशर, गार्ग्य, भार्गव और आङ्गिरस। ये सभी गोत्रनाम हैं। इनमें सारस्वत शिष्य भार्गव त्रिधामा (संभवतः मार्कण्डेय) दशम युग का व्यास था।

---

(१) अपान्तरतमा नाम मुनिर्वाक्संभवो हरेः।
उद्भूत्तत्र धीरूपमृग्यजुसामसंकुलम्।
विष्णुसंकल्पभूतमेतद् वाच्यायनेरितम्॥ (अध्याय ११)
वाक् का पुत्र होने से सारस्वत का एक नाम वाच्यायन भी था।

(२) "अपान्तरतमा नाम वेदाचार्यः पुराणर्षिः विष्णुनियोगात् कलिद्वापरयोः सन्धौ कृष्णद्वैपायनः संभूव इति स्मरन्ति।" (वेदान्तभाष्य ३।३।३२)।

त्रिधामा (मार्कण्डेय) भार्गव—दशम व्यास—मार्कण्डेय के पिता का नाम मृकण्डु था अतः इनको मार्कण्डेय कहते थे। शण्ड और मर्क, उशना के पुत्र असुर पुरोहित थे, सम्भवतः मर्क ही मृकण्डु हों, यदि मार्कण्डेय भार्गव और त्रिधामा भार्गव एक ही हों तो ठीक है अन्यथा मार्कण्डेय का वास्तविक नाम अज्ञात ही है। मार्कण्डेय ने दशमयुग में (१०७६० वि० पू०) मार्कण्डेयपुराण की रचना की, जिसका अर्वाचीनरूप मार्कण्डेयपुराण के रूप में मिलता है, वर्तमानपुराण का पाठ अधिसीमकृष्ण पाण्डवकाल में(२७५० वि०पू०) बनाया गया। इस पुराण में चौदह मन्वन्तरों, काशिराज अलर्क, दत्तात्रेय और वैशालवंश के राजाओं का चरित्र विशेषरूप से वर्णित है।

दत्तात्रेय और मार्कण्डेय का विशेषसम्बन्ध पुराणों द्वारा ज्ञात होता है। वेदश्रुति का अनेक बार लोप, हरण या प्रणाश हो चुका है, इसका उद्धार अनेक बार महापुरुषों (अवतारों) या ऋषियों ने किया। मधुकैटभ द्वारा वेदश्रुति का अपहरण एवं हरि द्वारा रसातल से उसका प्रत्यानयन इतिहासपुराणों में विख्यात है। वसिष्ठ एवं अपान्तरतमा व्यासों द्वारा वेदों का उद्धार पूर्वपृष्ठों पर उल्लिखित किया जा चुका है। इसी प्रकार की घटना दशम त्रेतायुग में (१०७६० वि. पू.) हुई। दत्तात्रेय ने वेदों, ब्राह्मणों, विधिविधानों एवं यज्ञों के लुप्त होने तथा चातुर्वर्ण्यधर्म के नष्ट होने पर उनकी पुनः स्थापना की—

दत्तात्रेयं इति ख्यातः क्षमया परया युतः।
तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च॥
सहयज्ञक्रिया वेदाः प्रत्यानीता हि तेन वै।
(हरिवंशपु. १।४१।४, ५, ७)

दत्तात्रेय काशिराज अलर्क एवं कार्त्तवीर्य हैहय अर्जुन के समकालीन थे। सहस्रबाहु अर्जुन पर इनकी परम कृपा थी। दत्तात्रेय के पुरोहित मार्कण्डेय ऋषि थे—

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सरः॥ (वायुपुराण)

"दशम त्रेतायुग में विष्णु का चौथा अवतार दत्तात्रेय के रूप में हुआ, मार्कण्डेय को आगे करके या पुरोहित बनाकर।"

अतः दशम बार व्यास के रूप में मार्कण्डेय त्रिधामा भार्गव ने दत्तात्रेय की सहायता से वेदों का उद्धार (सम्पादन) किया।

मार्कण्डेय की दीर्घायु पुराणों में विख्यात है—

"मार्कण्डेयः सुदीर्घायुः" (वाल्मीकि रामा० १।७।१४)

महाभारत से ज्ञात होता है कि मार्कण्डेय पाण्डवों के समय तक जीवित थे—

बहुवत्सरजीवी च मार्कण्डेयो महातपाः ।
दीर्घायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं तथा ।। (वनपर्व ।८।)

मार्कण्डेय ने दैत्यदानवों को प्रत्यक्ष देखा था, युधिष्ठिर उनसे कहते हैं—

भवान् दैवतदैत्यानामृषीणां च महात्मनाम् ।
राजर्षीणां च सर्वेषां चरितज्ञः पुरातनः ।। (वनपर्व १८३।५४)

दशमयुग के अनन्तर विभिन्न युगों में वेदोद्धारक निम्न व्यास हुए—

एकादश युग में	=	त्रिशिख व्यास
द्वादश ,,	=	शततेजाः
त्रयोदश ,,	=	नारायण
चतुर्दश ,,	—	अन्तरिक्ष
पञ्चम ,,	=	त्र्यारुणि
षोडश ,,	=	संजय
सप्तदश ,,	=	कृतञ्जय
अष्टादश ,,	=	ऋतञ्जय

उपर्युक्त आठ व्यास क्रमशः ३६० वर्षों के अन्तर से हुए ।

इन आठों वेदव्यासों का जीवन या कृतित्व कुछ भी ज्ञात नहीं होता, अतः उन्नीसवें व्यास भरद्वाज का यत्किञ्चित् विवरण प्रस्तुत करते हैं ।

भरद्वाज, उन्नीसवें व्यास—विक्रम से ७५४० वर्ष पूर्व अथवा युधिष्ठिर से ४४०० वर्ष पूर्व उन्नीसवां त्रेतायुग यापरिवर्त चल रहा था । इसी समय भरद्वाज ऋषि ने वेदों का सम्पादन किया । ये उन्तीसवें व्यास बृहस्पतिपुत्र आदिम भरद्वाज के वंशज थे । यह पहिले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि प्राचीनकाल में गोत्रनाम से हीं ऋषि की अधिक प्रसिद्धि होती थी । भरद्वाज के वंश में उत्पन्न प्रत्येक ऋषि भरद्वाज या भारद्वाज कहलाता था, जैसा कि आज भी कहलाता है । पण्डित भगवद्दत्त सभी भरद्वाजों को एक मानते हैं । यह अनुचित एवं ऐतिह्यविपरीतमत है । आदिम बार्हस्पत्य भरद्वाज वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि के समकालीन थे और इन्द्र के शिष्य थे, वे सप्तर्षियों में से एक थे । वह निश्चय ही दीर्घजीवी थे, जैसा कि ऐतरेयब्राह्मण में उल्लिखित है—परन्तु महाभारतकालीन द्रोणाचार्य के पिता भरद्वाज (भारद्वाज) और इन्द्रशिष्य बार्हस्पत्य भरद्वाज एक नहीं हो सकते । इनमें ८००० वर्षों का अन्तर था । भले ही ऋषियों का दीर्घजीवन कितना ही लम्बा क्यों न हो, एक सहस्र वर्ष से अधिक आयु का होना प्रायः असम्भव है । इन्द्रशिष्य भरद्वाज बार्हस्पत्य ३०० वर्ष की आयु में ही अत्यन्त जीर्ण शरीर हो गए थे—

'भरद्वाजो ह त्रिभिरायुर्भिर्ब्रह्मचर्यमुवास तं ह जीर्णि स्थविरं शयानम् इन्द्र उपव्रज्योवाच ।" (तै० ब्रा० ३।१०।११।४५) ।

यह आद्य भरद्वाज तीन सौ वर्ष की आयु में ही बूढ़ा हो गया था, फिर यही भरद्वाज द्रोणचार्य का पिता था तो ८००० वर्ष की आयु में इतना कामुक और समर्थ कैसे हो गया कि अप्सरा से संभोग करने के लिए लालायित हो गया । साधारणतः मनुष्य की सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति ४० वर्ष तक ही होती है, पुनः ८००० वर्ष की आयु का ऋषि सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा करे, यह बुद्धिगम्यता से सर्वथा परे है । इस बात को कविराज सूरमचन्द्रजी जैसे वैद्यवाचस्पति न समझें तो यह बुद्धि की महती विडम्बना है ।[1] इस सम्बन्ध में पं० युधिष्ठिर मीमांसक[2] का मत सत्य के निकट है, जिसके अनुसार भरद्वाज की आयु लगभग एकसहस्र वर्ष थी ।

अतः मूल भरद्वाज एक ही था और उसके सहस्रोंवंशज भी भरद्वाज या भारद्वाज कहलाते थे । अतः भरद्वाज (भारद्वाज) अनेक हुए । द्रोणपिता भरद्वाज का बार्हस्पत्य भरद्वाज से दूर का सम्बन्ध भी नहीं था । उन्नीसवें व्यास भरद्वाज (भारद्वाज) भी आदि भरद्वाज (बार्हस्पत्य) नहीं थे । इन दोनों में भी अनेक सहस्र वर्षों का अन्तर था । पुराणों के अनुसार भरद्वाज व्यास के शिष्य हिरण्यनाभ कौसल्य कुथुमि इत्यादि थे । सामवेद की कौथमीयशाखा के प्रवर्तक ये ही कुथुमि ऋषि थे । हिरण्यनाभ कौसल्य आदि पाराशर्य व्यास से लगभग १००० वर्ष पूर्व वेदप्रवचन और शाखाप्रवचन कर चुके थे । पुराणों में भ्रम से कौसल्य को व्यास-शिष्य जैमिनि की शिष्यपरम्परा में सम्मिलित किया गया है । कौथुमीय आदि शाखाओं के मूलप्रवर्तक भरद्वाज व्यास ही थे । अतः वे उन्नीसवें व्यास माने गए ।

वाजश्रवा :—बीसवें व्यास : बृहदारण्यकोपनिषद्[3] (६।५।४) में आदित्य विवस्वान् की शिष्यपरम्परा में जिह्वावान् बाध्योग ऋषि के शिष्य वाजश्रवा उल्लिखित हैं । इन्हीं वाजश्रवा का कठोपनिषद् में उल्लेख है, जो सर्ववेदस्यज्ञ कर रहे थे और जिनका पुत्र नचिकेता यमराज के पास जाकर आत्मज्ञान प्राप्त करता

---

(१) श्री सूरमचन्दजी ने 'आयुर्वेद का इतिहास (अष्टम अध्याय) में बार्हस्पत्य भरद्वाज और द्रोणपिता भारद्वाज को एक सिद्ध करने के लिए जीजान का जोर लगाया है । लगभग यही मत पं० भगवद्दत्त का है—द्र० पृ० १४६—भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग ।

(२) सं० व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृ० ६८ ।

(३) "वाजश्रवा जिह्वावतो बाध्योगात्" (बृ० उ०)

है । अतः वाजश्रवा एक प्राचीन वेदाचार्य एवं बीसवें व्यास थे ।[1] इनके विषय में इससे अधिक विवरण ज्ञात नहीं है ।

इक्कीसवें व्यास वाचस्पति, बाईसवें व्यास सोमशुष्म, तेईसवें व्यास निर्यन्तर, चौबीसवां व्यास तृणविन्दु का भी कोई उल्लेखनीय वृतान्त या कृतित्व ज्ञात नहीं । केवल इतना ज्ञात है तृणविन्दु वैशाली के राजा थे और वैश्रवण कुबेर और रावण के पितामह पुलस्त्य के घनिष्ठ मित्र थे ।

ऋक्षवाल्मीकि - पच्चीसवां व्यास (५७०० वि. पू.)—ऋक्ष व्यास(वाल्मीकि) का वेदप्रवचनकाल ५७०० वि० पू० से ५३४० वि० पू० (३६० वर्ष) था । इन्होंने चौबीसवें वार वेद का संकलन किया, अतः ये व्यास कहलाए । वाल्मीकि के मन्त्रकृत् (ऋषि) होने की बात कालिदास को ज्ञात थी—

निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।
सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत् ।।[2]

मन्त्रकृत् ऋषि वाल्मीकि जनक और दशरथ के सखा थे, निषाद द्वारा कौञ्चपक्षी के वध को देखकर शोकविह्वल मुनि के मुख से नूतन छन्द का अवतार हुआ—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं गमः शाश्वती समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

विष्णुपुराण में वाल्मीकि का मूलनाम ऋक्ष लिखा है—

"ऋक्षोऽभूद्भार्गवस्तस्माद्वाल्मीकिर्योऽभिधीयते ।" (३।३।१८)

वाल्मीकि नाम तप करने के कारण अथवा पिता का नाम 'वल्मीक' होने, से अपत्य नाम "वाल्मीकि" पड़ा ।

कृष्णद्वैपायनव्यास से पूर्व एकमात्र ऋक्षव्यासवाल्मीकि का ही एक इतिहासग्रन्थ (रामायण) उपलब्ध है । वाल्मीकिव्यास और दाशरथिराम चौबीसवें युग में हुए—

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरस्सरः ।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ।।

---

(१) ततो विंशतितमे सर्गे परिवर्ते क्रमेण तु ।
वाजश्रवाः स्मृतो व्यासो भविष्यति महामतिः ।। (वायुपुराण)

(२) रघुवंश (१४।७०; १५।३१)

तैत्तिरीयप्रातिशाख्य और मैत्रायणी प्रातिशाख्य में वाल्मीकि के वैदिक उच्चारणसम्बन्धीनियम मिलते हैं, इससे सिद्ध होता है कि वाल्मीकि ने किसी वेदसंहिता का प्रवचन किया था।

वाल्मीकि आयुर्वेद एवं धनुर्वेद के भी परमाचार्य थे, इनके चार प्रधान शिष्य थे—शालिहोत्र, युवनाश्च, अग्निवेश और शरद्वसु। इनमें शालिहोत्र ने अश्वचिकित्सा और अग्निवेश ने मूल चरकसंहिता रची थीं।

वाल्मीकि का समय विक्रम से ५७०० से ५३४० वर्षपूर्व था, जो इनको ३०० या ४०० वि. पू. रखते हैं, उनको इतिहास का अणुमात्र भी ज्ञान नहीं।

शक्ति—पच्चीसवां, छब्बीसवाँ व्यास—कालक्रम की दृष्टि से शक्ति व्यास का समय वाल्मीकि से एक युग (३६० वर्ष) पूर्व होना चाहिए, क्योंकि, शक्ति ऐक्ष्वाक राजा सौदास कल्माषपाद[1] के समय हुए, जो कि राम से १० पीढ़ी (५०० वर्ष) पूर्व हुए। प्रतीत होता है कि शक्ति के किसी वंशज ने वाल्मीकि के पश्चात् वेदप्रवचन किया, अन्यथा शक्ति का समय वाल्मीकि से बहुत पूर्व था।

पराशर—सत्ताईसवां व्यास—शक्ति के पुत्र पराशर छब्बीसवें व्यास थे, इनका एक नाम 'शतयातु' ऋग्वेद में मिलता है।

पराशर के वंशज जातूकर्ण सत्ताईसवें और कृष्णद्वैपायन तीसवें व्यास थे। इतिहास के अनुसार आद्य पराशर और कृष्णद्वैपायन में २००० वर्षों का अन्तर था। इस विषय का विस्तृतविवेचन आगे करते हैं।

अट्ठाईसवां व्यास—हिरण्यनाभकौसल्य—उन्तीसवां व्यास—जातूकर्ण—तीसवां व्यास—कृष्णद्वैपायन पाराशर्य (अन्तिम) व्यास—इनको अर्वाचीनतमव्यास होने से 'व्यासक' भी कहते थे, जिससे इनके पुत्र की संज्ञा (विशेषण—अपत्यनाम) वैयासकि (शुक) प्रथित हुई।

इनके पिता पराशर या पाराशर मुनि थे। यह ध्यातव्य है कि इतिहास में वासिष्ठ और पाराशर नाम के अनेक ऋषि हुए थे, क्योंकि प्राचीनकाल में ऋषियों की प्रसिद्धि प्रायः गोत्रनाम से होती थी, अतः नामसाम्य से इतिहास में भ्रम होता है। पराशर, पाराशर एवं पाराशर्य के सम्बन्ध में यही भ्रम हुआ। इन नामों से प्रसिद्ध अनेक व्यक्ति हुए। इन सबको एक मानकर महान् भ्रम उत्पन्न हुआ।

अतः शक्तिपुत्र पराशर और कृष्णद्वैपायनपितापराशर एक व्यक्ति नहीं थे, द्वैपायनपिता मात्रपराशर गोत्रीयब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम 'द्विप पाराशर' था, इसीलिए इनका नाम द्वैपायन पाराशर्य हुआ। शक्ति और कृष्ण-

---

(१) सौदासस्य महायज्ञे शक्तिना गाधिसूनवे (बृहद्दे० ४।१।२)

द्वैपायन के समय में न्यूनतम २५०० वर्षों का अन्तर था, इनके मध्य २० या २५ पीढ़ियाँ अवश्य हुई होंगी ।

कृष्णद्वैपायन के पिता आदिपराशर नहीं थे, इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि इनके गुरू जातूकर्ण[1] (मूलपुरुष जतूकर्ण) भी पाराशर ब्राह्मण थे, यदि कृष्णद्वैपायन ही पराशर के प्रथमपुत्र होते तो जतूकर्ण, पञ्चशिख आदि कृष्णद्वैपायन के पूर्ववर्ती पाराशर्य ब्राह्मण कैसे हो सकते थे । अतः कृष्णद्वैपायन के पिता 'द्विप' पराशरगोत्रीयब्राह्मण थे, आदिपराशर नहीं ।

जातूकर्ण्य नाम के भी अनेक ब्राह्मण आचार्य हुए थे, शंखायनश्रौतसूत्र में एक जड़ जातूकर्ण्य आचार्य का उल्लेख है । ऋग्वेद की एक जातूकर्ण्यशाखा भी थी । अतः पराशर के वंशज जातूकर्ण्य ही अनेक थे, तो अनेक पाराशर्य क्यों नहीं हो, वर्तमान उपलब्ध प्रायः समस्त वैदिक एवं पौराणिक वाङ्मय पाराशर्यव्यास एवं उनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा सम्पादित एवं संकलित है । इन्हीं पाराशर्यव्यास ने कलिसंवत् से प्रायः दो सौ वर्ष (२००) पूर्व स्ववेदशाखाचरण का प्रवर्तन किया । पाश्चात्यलेखक प्रायः पाराशर्यव्यास का अस्तित्व ही नहीं मानते, क्योंकि उनको अपने काल्पनिकमतों पर कुठारघात का भय व्यासजी और उनके महाभारत से ही था । अतः उन्होंने इनके अस्तित्व पर ही प्रहार किया ।[2]

जब, पाश्चात्य लेखक पाराशर्य व्यास के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते, तो प्राक्पाराशर्य २९ व्यासों की कथा का उनके सम्मुख क्या मूल्य है । इस

---

(१) पाराशर्यो जातूकर्ण्यात् (बृ० उ०)
जातमात्रं च यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः ।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्ण्यादवाप तम् ।। (वायुपुराण १।४३)

(२) "राथ मैक्समूलर, मैकडानल कीथ और हाप्किन्सप्रभृति पाश्चात्यलेखकों को सबसे अधिक भय व्यासजी और महाभारत से था । इस हेतु उन्होंने व्यासजी को मिथिकल और ऊनके ग्रन्थ को बहुविधकालों में रचित माना ।" (भा बृ० ह० प्र० भा० पृ १९६) ।
हाप्किन्स ने लिखा है—
"Vaishampayana and Vyasa are mentioned as early as the taithiriya Ayanyaka, but not as author or editors of the epic which is now their chief claim to recognition (Cambridge History of India Vol. I. 252)
कीथ ने लिखा है—
"Vyasa Parasarya is the name of a mythological sage (Vedic Index, p. 339).

समय पाराशर्य व्यास ही वेदवाङ्मयवृक्ष के मूल है, जब इस मूल को उखाड़ दिया जाय, तब उसकी शाखा-प्रशाखायें कहाँ रहेगी। अतः जब उन्होंने व्यासजी के अस्तित्व पर ही हाथ फेर दिया तो उनके शिष्य प्रशिष्य वैशम्पायन चरक, सुमन्तु, जैमिनि, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, कात्यायन आदि कहाँ रहे। अतः जिस प्रकार कौटिल्य ने समूल नन्दवंश का नाश किया, उसी प्रकार पाश्चात्यलेखकों ने समूल भारतीयसत्य इतिहास को खोद डाला। यह सब काम उन्होंने मैकाले की योजना के अन्तर्गत किया। परन्तु भारतीय इतिहास की जड़े तो पाताल में गई हुई थी, वे उसे पूरी तरह नहीं उखाड़ पाए।

अतः पाराशर्यव्यास न केवल भारतीयइतिहास के प्रधानपुरुष वरन् वैदिकवाङ्मय के प्रधानस्तम्भ आचार्य थे। इनका उल्लेख शतपथब्राह्मण[1], गोपथब्राह्मण[2] तैत्तिरीयारण्यक[3] एवं बौधायनगृह्यसूत्र जैसे अनेक वैदिकग्रन्थों में मिलता है।

व्यासजी समस्त वेदवेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ थे।[4]

वेदव्यास अद्वितीय यज्ञवेत्ता (ऋत्विक्) थे, जिनके शिष्य सब यज्ञों में निपुण होकर पृथिवी पर (यज्ञकार्यार्थ) विचरण करते थे।[5]

इनके विषय में पुराणों में कहा गया है कि समस्तवेद ब्राह्मणभागसहित इनके पास स्वयं ही उपस्थित हो गया, केवल लोकधर्म का पालन करते हुए इन्होंने गुरू जातूकर्ण्य से वेद पढ़ा।[6]

पूर्वयुगों में रचित वेदवाङ्मय अस्तव्यस्त हो रहा था। व्यासजी ने देखा कि उनके समय में मनुष्यों की आयु एवं शक्ति क्षीण होती जा रही है। अतः उन्होंने सभी पुरातनवेदसंहिताओं का सार संकलित करके चार वेद बनाए, जिससे वे भी 'व्यास' कहलाए।[7]

---

(१) पाराशर्यो जातूकर्ण्याद् (श० ब्रा० १४।४।६।३)
(२) एतस्माद् व्यासः पुरोवाच (गो० ब्रा०)
(३) स होवाच व्यासः पाराशर्यः (तै० आ० ६।३५)
(४) सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः (शान्तिपर्व २।६)
(५) ऋत्विक् समो नास्ति लोकेषुचैव।
द्वैपायनेनेति विनिश्चितं मे ।।
एतस्य शिष्या क्षितिमाचरन्ति।
सर्वर्त्विजः कर्मसु स्वेषु दक्षाः ।। (आदिपर्व ५५।६)
(६) जातमात्रं च यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्ण्यार्दवाप तम् ।। (वायुपु० १।४३)
(७) पादापसरिणं धर्मं स तु विद्वान् युगे युगे।
आयुः शक्तिं च मर्त्यानां युगावस्थामवेक्ष्य च।
विव्यास वेदान् यस्माद् स तस्माद् व्यास इति स्मृतः। (आदिपर्व ६३।८७-८८)

पाराशर्यव्यास का जन्म राजराजेश्वर शन्तनु के राज्यकाल में हुआ था। इनके पिता 'द्विप' पराशरगोत्रीयब्राह्मण थे, अतः इनका नाम हुआ 'कृष्णद्वैपायन पाराशर्य'। इनकी माता राजा उपरिचर वसु की पुत्री 'सत्यवती' थी, जिसका पालन दाशराज ने किया था, ये कुमारी कन्या से यमुनातट पर उत्पन्न हुए, इसलिए 'कानीन' भी कहे जाते हैं। इनके शरीर का रंग काला था, अतः इनका नाम 'कृष्ण' हुआ। व्यासजी का जन्म वर्तमान झाँसी के निकट कालपीग्राम में हुआ था। उन्होंने स्वगोत्रीय (पाराशरब्राह्मण) जातूकर्ण्य से विद्या पढ़ी। प्रतीत होता है कि पाराशर्यव्यास से पूर्व वसिष्ठ, सारस्वत हिरण्यनाभ, वाल्मीकि आदि के द्वारा सम्पादित वेदमन्त्रों की अनेक संहितायें थीं। उन्होंने सभी संहिताओं से सार संकलित[1] करके ऋग्वेदादि चार संहितायें बनाई। वेदों के अनन्तर व्यासजी ने लक्षश्लोकात्मक महाभारतसंहिता[2] की रचना की। महाभारत (इतिहासपुराण) को पञ्चमवेद कहा जाता था (इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः, छा० उ०), इन पाँचों वेदों को व्यासजी ने अपने पुत्रसहित पाँचशिष्यों को पढ़ाया—

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम्।
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च॥ (आदिपर्व ६३।८७-९०)

"महाभारतसहित पाँचवेदों का अध्यापन व्यासजी ने सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शुक (अपने पुत्र) एवं वैशम्पायन को कराया।" इनमें पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद और सुमन्तु को अथर्ववेद का विशेष अध्ययन कराया।

व्यासकृतवेदप्रवचनकाल (३१९५ वि० पू०)—पं० भगवद्दत्तजी के अनुसार व्यासजी ने वेदशाखाचरणप्रवर्तन शन्तनु के राज्यकाल में, कलि से १५० वर्ष पूर्व या ३१९५ वि० पू० किया था। उन्हीं के शब्दों में युधिष्ठिरराज्य की समाप्ति पर कलि का प्रारम्भ माना जाता है। सब शास्त्रों का मत है कि शाखाप्रवचन

---

(१) इसी प्रकार पुलस्त्य, मार्कण्डेय, वायु, उशना, नारद आदि पुरातन ऋषियों के रचित सैकड़ों पुराणों का सारग्रहण करके व्यासजी ने मात्रचतुःसहस्रश्लोकात्मक पुराण रचा था—
आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैः गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥

(२) महाभारत भी साठलाखश्लोकों का संक्षेपसार था—
षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्।
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम्॥ (आदिपर्व १।१०५, १०७)
ये साठलाखश्लोक पूर्वव्यासों की रचनायें थीं।

द्वापरान्त में हुआ। ईश्वर को धन्यवाद है कि महाभारत, आदिपर्व ९९।१४-२२ में शाखाप्रवचन का काल मिलता है। वहाँ लिखा है कि विचित्रवीर्य की पत्नियों में नियोग करने से पूर्व व्यासजी शाखाप्रवचन कर चुके थे।.....वेदशाखाप्रवचन कलि से कोई १५० वर्ष पूर्व हुआ। शाखाप्रवचन के समय व्यासजी ५० वर्ष के थे।[1]

अन्यत्र पं० भगवद्दत्त ने लिखा है—"शन्तनु के राज्यारम्भ से भारतयुद्धतक १६३ वर्ष बीते। इसका ब्यौरा निम्नलिखित है—

शन्तनु	=	५० वर्ष राज्यकाल
विचित्रवीर्य	=	१२ ,, ,,
भीष्मनेतृत्व	—	२० ,, ,,
पाण्डु	=	५ ,, ,,
धृतराष्ट्र	=	४० ,, ,,
दुर्योधन	=	३६ ,, ,,
भारतयुद्ध तक कुल		१६३ वर्ष

इसमें युधिष्ठिरराज्यकाल के ३६ वर्ष जोड़ने पर १९९ वर्ष हुये।.....

यदि शन्तनुराज्यकाल के ५० वर्ष कम कर दिए जायें तो १५० वर्ष बचते हैं।[2]

प्रसिद्ध पुराणज्ञपार्जीटर यद्यपि पूर्णतथ्य को नहीं जान सका, परन्तु उसको यह आभास हो गया था कि व्यासचरणप्रवर्तन भारतयुद्ध से पूर्व हुआ।[3]

अब आगे व्यासशिष्यों और प्रशिष्यों का संक्षेप में परिचय लिखते हैं, जो प्रसिद्ध वेदाचार्य हुए और जिनकी परम्परा में महान् वेदाचार्य एवं कल्पसूत्रकार हुए।

वेदाचार्य पैल—व्यासजी ने पैल को विशेषतः ऋग्वेद पढ़ाया। माता का नाम 'पीला' होने से ये 'पैल' कहलाए, इनके पिता का नाम 'वसु' था।[4] ऋग्वेद के अध्ययन में पैल के दो प्रधानशिष्य थे—बाष्कल और इन्द्रप्रमिति। पैलशिष्यपरम्परा

---

(१) वै० वा० उ० प्र० भा० (पृ० १७१)

(२) भा० बृ० इ० द्वि० भा० पृ० १५४

(३) He (Vyasa) would probably have completed that work of Vedic recensions) about a quarter of century before Bharat Battle, (A.H.T. p. 318)

(४) पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोऽभवत् (सभापर्व ३६।३५)

पुराणों में इस प्रकार दी हुई है—

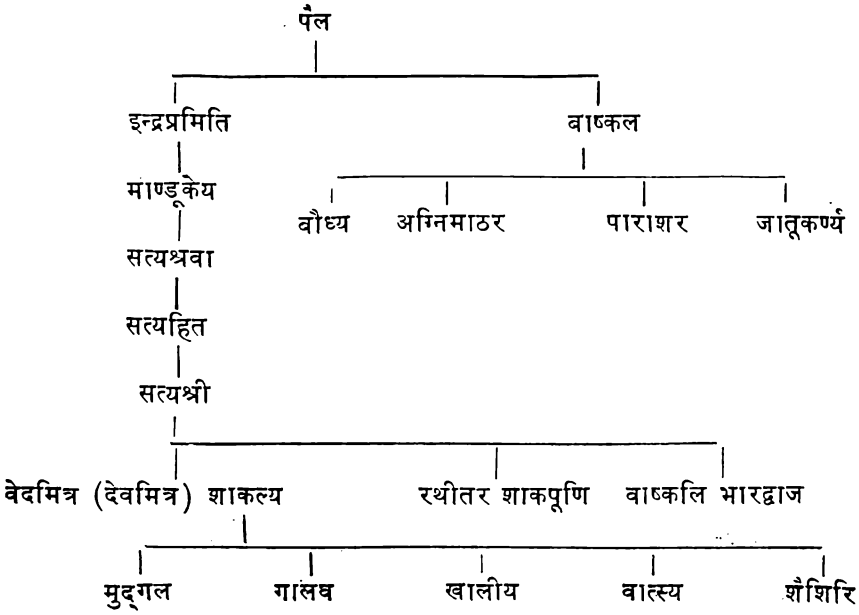

ऋग्वेद की २१ शाखाओं के प्रवर्तक उपर्युक्त वेदाचार्य थे। इन २१ शाखाओं के पाँच मुख्य विभाग थे—"शाकलाः, बाष्कलाः, आश्वलायनाः, शांखायनाः, माण्डूकेयाः"। इनमें वेदमित्र शाकल्य श्रेष्ठवैदिकविद्वान् थे, उसके पाँच शिष्यों—मुद्गल आदि ने ऋग्वेद की पाँच शाखायें बनाई।[1]

इस समय ऋग्वेद की केवल एकमात्र शैशिरीयशाखा उपलब्ध है, जिसका पदपाठ शाकल्य का बनाया हुआ है। आश्वलायन और शांखायन ऋग्वेद के दो शाखाप्रवर्तक आचार्य थे।

वैशम्पायन चरक—यजुर्वेद के दो भेद हैं—कृष्णयजुः एवं शुक्लयजुः।[2] इन दोनों का मूल पहिले ही भृगु एवं विवस्वान् से बताया जा चुका है, जिसको दुहराने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। शुक्ल-कृष्ण नामकरण की एक सूझ एक विद्वान् ने लिखी है—

---

(१) देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः।
चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः।
तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुद्गलो गोलकस्तथा।
खालीयश्च तथा वात्स्यः शैशिरेयस्तु पञ्चमः॥ (वायु० ६०।६३-६४)

(२) शुक्लं कृष्णमिति यजुश्च समुदाहृतम्।
शुक्लं वाजसनं ज्ञेयं कृष्णं तु तैत्तिरीयकम्॥

बुद्धिमालिन्यहेतुत्वाद्यजुः कृष्णमीर्यते ।
व्यवस्थितप्रकरणाद्यजुः शुक्लमीर्यते ।। (प्रतिज्ञासूत्रभाष्य)

परन्तु इनके नामकरण का यह हेतु काल्पनिक एवं असमीचीन है। शुक्ल सूर्य (विवस्वान्) का नाम था, इसलिए इनको 'शुक्लयजुः' कहा गया। वाजसनेय के नाम से इन्हें 'वाजसनेय यजुः' कहा गया। वाजसनेय के नाम से इन्हें 'वाजसनेय यजुः' भी कहते हैं। इसी प्रकार 'कृष्णद्वैपायनव्यास के नाम से ही 'कृष्णयजुः', कहलाये, यही समीचीन प्रतीत होता है।

पाराशर्यकृष्णद्वैपायनव्यास ने 'कृष्णयजुर्वेद' का अध्ययन प्रतापीशिष्य वैशम्पायन को कराया। वैशम्पायन का ही दूसरा नाम चरकाचार्य था—'चरक इति वैशम्पायनस्याख्या (काशिका ४।३।१०३) चरकाचार्य का उल्लेख शुक्लयजुर्वेद एवं शतपथब्राह्मण में अनेक स्थानों पर हुआ है। पुराणों के अनुसार वैशम्पायन की शिष्यपरम्परा में ८६ वेदाचार्यों ने इतनी ही याजुषशाखाओं[1] का प्रवचन किया। शिष्यों अथवा संहिताओं के तीन विभाग थे—उदीच्य, मध्यदेशीय और प्राच्य। इनके प्रधान ९ शिष्य थे—

आलाम्बिश्चरकः प्राचां पलङ्कमलावुभौ ।।
ऋचाभारुणिताण्ड्याश्च मध्यमीयास्त्रयोऽपरे ।
श्यामायन उदीच्येषु उक्तः कठकलापिनौ ।।

आचार्य वैशम्पायन का एक अन्य प्रधान शिष्य था—'तित्तिरि' इसी आचार्य के नाम से आज कृष्णयजुर्वेद की 'तैत्तिरीयशाखा' प्रसिद्ध है। तित्तिरि वाजसनेय याज्ञवल्क्य का सतीर्थ्य (सहपाठी) था।

वाजसनेय याज्ञवल्क्य—पाराशर्य व्यास के अनन्तर वेदाचार्यों में सर्वाधिक प्रथितयशाः आचार्य वाजसनेय याज्ञवल्क्य हुए हैं। शुक्लयजुर्वेद और शतपथब्राह्मण (विशेषत बृहदारण्यकोपनिषद्) याज्ञवल्क्य की दिग्दिगन्तव्यापिनीकीर्ति के प्रतिमूर्ति हैं। गोल्डस्टकरनामक प्रसिद्ध जर्मनसंस्कृतज्ञमहोदय 'वाजसनेयिसंहिता' का

---

(१) वैशम्पायनगोत्रोऽसौ यजुर्वेदं व्यकल्पयत् ।
षडशीतिस्तु येनेक्ताः संहिता यजुषां शुभाः ।
षडशीतिस्तथा शिष्याः संहितानां विकल्पकाः । (वायुपुराण)

अस्तित्व पाणिनि से पूर्व नहीं मानते थे ।[1] इसी प्रकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल[2] के मत में याज्ञवल्क्यकृत शतपथब्राह्मण की भूयसी प्रतिष्ठा नहीं थी। ये दोनों ही मत अत्यन्त भ्रमपूर्ण एवं निराधार हैं। अतः वास्तविक तथ्यों का यहाँ उद्घाटन किया जाता है। शतपथब्राह्मणप्रणेता का वास्तविक नाम अज्ञात ही है, क्योंकि इनकी माता का नाम 'वाजसना' था अतः ये 'वाजसनेय' कहलाए, और 'यज्ञवल्क्य' गोत्र होने से 'याज्ञवल्क्य' नाम से प्रसिद्ध हुए, क्योंकि याज्ञवल्क्यगोत्र में सैंकड़ों व्यक्ति हुए होंगे। इन दोनों नामों के कारण ही उपर्युक्त विद्वद्द्वयी को भ्रम हुआ। 'याज्ञवल्क्य' गोत्र नाम होने से उनकी प्रसिद्धि 'वाजसनेय' नाम से ही अधिक थी, अतः चरण की प्रसिद्धि भी 'वाजसनेय' नाम से थी, न कि 'याज्ञवल्क्य' नाम से होती। 'यज्ञवल्क्य' और 'याज्ञवल्क्य' तो उनके बहुत पुराने पूर्वज थे, जो कि विश्वामित्र कौशिक के पुत्र थे, देवराज इन्द्र के समकालीन उनके पूर्वज 'याज्ञवल्क्य' के नाम से 'चरण' की प्रसिद्धि क्यों होती। तैत्तिरीयचरण के अन्यतम आचार्य आपस्तम्ब के कल्पसूत्र में अनेकशः 'वाजसनेय' चरण का भूरिशः उल्लेख एवं मान्यता हैं। विधिविधान के विषय में जहाँ कहीं भी मतभेद या शंका होती है, वहीं आचार्य आपस्तम्ब ने 'वाजसनेयचरण' एवं 'वाजसनेयब्राह्मण' (शतपथब्राह्मण) का उल्लेख किया है। आपस्तम्बश्रौतसूत्र के निम्नसूत्रों में 'वाजसनेयिन', चरण का उल्लेख है—

१।८।१२, ५।१२।८, ६।२७।१, ८।१०।१२, इत्यादि। अतः उपर्युक्त विद्वानों का मत वितथ, अज्ञानमूलक एवं इतिहासविपरीत है कि पाणिनि से पूर्व

---

(१) I have adduced for the non-existence in Panini's time of the VajasanayaSamhita arranged by Yajnavalka. (Panini : His place in Sanskrit Lit. by theodor Goldstircker, p. 154).

(२) "यदि यह बात सत्य है कि याज्ञवल्क्य भी शाट्यायन आदि के समान ही प्राचीन आचार्य थे, तो प्रश्न होता है कि उनके ग्रन्थों में तद्विषयकता का नियम लागू क्यों नहीं हुआ और याज्ञवल्क्य के नाम से ही चरण का नाम क्यों नहीं प्रवृत हुआ, जैसा कि समस्त प्राचीन छन्द और ब्राह्मण एवं कहीं कल्पसूत्रों के रचियता ऋषियों के नाम से हुआ।...यह प्रश्न संगत है कि यदि याज्ञवल्क्य का ब्राह्मण भी प्राचीन था, तो लोक में उससे सम्बन्धितचरण की स्थापना क्यों नहीं हुई। इस निश्चित और स्पष्ट प्रश्न का उत्तर यही प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य तुल्यकाल (अचिरकाल) अर्थात् लगभग पाणिनि के आसपास होने वाले आचार्य थे, जिनके ब्राह्मणभाग पुराणप्रोक्त नहीं माने जाते थे।" (पाणिनिकालीनभारतवर्ष, पृ० ३२३)

'वाजसनेयचरण' नहीं था अथवा उसकी प्रसिद्धि नहीं। इसके विपरीत प्रमाणों से सिद्ध होता 'वाजसनेयचरण' की प्रतिष्ठा सर्वाधिक थी और तैत्तिरीयचरणवाले भी उनका लोहा मानते थे। आज भी 'शतपथब्राह्मण' सभी ब्राह्मणों में मूर्धन्य है। और यह 'ब्राह्मणग्रन्थ' केवल वाजसनेयमात्र की कृति नहीं है, इसमें वाजसनेय ने दध्यङ् आथर्वण, वृत्र त्वाष्ट्र, अयास्य आङ्गिरस, विवस्वान् जैसे प्राचीनतम ऋषियों के ब्राह्मणग्रन्थों का संकलन किया है, इसीलिए उसका कलेवर इतना विशाल है और तदनुरूप नाम भी है—'शतपथब्राह्मण' (सौ ब्राह्मणग्रन्थ)।

वाजसनेय याज्ञवल्क्य के दो गुरु थे। प्रथम, वैशम्पायन, जो उनके मामा भी थे। इनकी माता का नाम 'वाजसना' था, जिससे वे 'वाजसनेय' कहलाए। पिता का नाम 'देवरात' या 'ब्रह्मरात' था, याज्ञवल्क्यगोत्र का मूल विश्वामित्र कौशिक थे। याज्ञवल्क्यब्राह्मणों का मूल निवास आनर्त (गुजरात) बताया जाता है, वहाँ चमत्कारपुर के निकट याज्ञवल्क्य का आश्रम था। वाजसनेय का सम्बन्ध मैथिल जनक और मिथिला से भी रहा था। महाभारत, शान्तिपर्व में भीष्मपितामह याज्ञवल्क्य का आत्मचरित वर्णन करते हैं। अतः सिद्ध है कि वाजसनेय याज्ञवल्क्य भारतयुद्ध से पूर्व ही 'शतपथब्राह्मण' का प्रणयन कर चुके थे। जब गुरु वैशम्पायन से वाजसनेय का किसी कारण झगड़ा हो गया, तो उन्होंने गुरु के चरण (शाखा-चरकशाखा या तैत्तिरीयशाखा) को त्याग दिया, और उद्दालक आरुणि को अपना द्वितीय गुरु बनाया। उन्होंने बड़े श्रम एवं नियम से आदित्यप्रोक्त शुक्लयजुर्वेद का आरुणि से अध्ययन किया और अध्ययन के पश्चात् स्वचरण (वाजसनेयचरण) की स्थापना की। उन्होंने आरण्यक और उपनिषद्सहित शतपथब्राह्मण की रचना की और सौ शिष्यों को उसका अध्ययन कराया।[1]

वाजसनेययाज्ञवल्क्य का मैथिलनरेशजनक से अनेक बार शास्त्रार्थ एवं संवाद हुआ, यह इतिवृत भी शतपथब्राह्मण मे मिलता है। इन घटनाओं का महाभारत में उल्लेख होने से सिद्ध है कि याज्ञवल्क्यसम्बन्धीघटनाक्रम भारतयुद्ध से पूर्व हो चुका था।

पं० भगवद्दत्त के मत में याज्ञवल्क्य की आयु २३९ वर्ष थी (द्र० वै-वा. इ. भाग १, पृ. २६२)।

महाभारत में वाजसनेय के १०० शिष्य कथित हैं[1], परन्तु पुराणों में केवल

---

(१) यथाऽऽर्षेयेणेह विधिना चरताऽवनतेन ह।
मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप।
ततः शतपथं कृत्स्नं सरहस्यं ससंग्रहम्।
चक्रे सपरिशेषं च हर्षेण परमेणह॥
कृत्वा चाध्ययनं तेषां शिष्याणां शतमुत्तमम्।
विप्रियार्थं सशिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः॥ (शान्तिपर्व, अ० ३२३)

१५ के नाम मिलते हैं ।[1]

सामग आचार्य जैमिनि—भारतीय इतिहास में तृतीय व्यासशिष्य सामशाखा प्रवर्तक जैमिनि एक ही हुए हैं। पाश्चात्यलेखक कीथादि सामवेत्ता जैमिनि का या तो अस्तित्व ही नहीं मानते अथवा उनके मत में मीमांसाकारजैमिनि का समय ईस्वीसन् के आरम्भ के आसपास था। डा० पाण्डुरङ्ग वामनकाणे जैसे पाश्चात्य रङ्ग में रंगे भारतीय विद्वान् को मानना पड़ा कि कल्पसूत्रकार आपस्तम्ब को जैसिनीयमीमांसासूत्रों का ज्ञान था, क्योंकि उनके अनेक सूत्र आपस्तम्बश्रौतसूत्र में मिलते हैं।[2]

आश्वलायनगृह्यसूत्र में वैशम्पायन, सुमन्तु और पैल के साथ जैमिनि को भी सूत्र, भाष्य, भारत और महाभारत का आचार्य बताया है।[3] जैमिनिऋषि ने भारत और मीमांसासूत्रों से पूर्व सामसंहिता, जैमिनीयब्राह्मण और जैमिनीय कल्पसूत्र की रचना की थी। उनका सामवेद का प्रधानशिष्य तवल्कार था। जैमिनीयश्रौत के भाष्यकार भवत्रात ने व्यास, जैमिनि और तवल्कार को साथ साथ नमस्कार किया है[4], इससे सिद्ध होता है कि वे क्रमशः गुरु, शिष्य और प्रशिष्य थे।

---

(१) (१) माध्यदिन (२) काण्व (३) जाबाल (४) शापेय (५) बौधेय (६)ताम्रायण (७) कापोल (८) पौण्ड्रवत्स (९) आवटी (१०) पर्ण (११) वैणेय (१२) वैधेय (१३) कात्यायन (१४) वैजवाप (१५) पाराशर। इनमें माध्यदिन और काण्व प्रमुख थे, इनकी कृतियाँ ही इस समय उपलब्ध हैं।

(२) The correspondence in language with Purvamimansa Sutra is so close that Apastamba knew the extect Mimansa Sutra or an earlier version of it that contained almost the same expressions. (History of Dharmashastra p. 42).

(३) "सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारताचार्याः।"

(३।३।५, तथा कौ० गृ० २।५।३)

(४) उज्जहारागमाम्बोधेर्यो धर्मामृतमञ्जसा।
न्यायैर्निर्मथ्य भगवान् स प्रसीदतु जैमिनिः।
सामाखिलं सकल वेदमुनीन्द्राद् व्यासादवाप्य भुवि येन सहस्रशाखम्।
व्यक्तं समस्तमणिसुन्दरगीतरागं तं जैमिनिं तवल्कारगुरुं नमामि॥"
इस श्लोक से मीमांसासूत्रकार और व्यासशिष्य सामाचार्य जैमिनि की एकता पुष्ट होती है।

महाभारत, सभापर्व (४।६-१०) के अनुसार युधिष्ठिरसभा में बक दाल्भ्य (मैत्रेय), व्यासादि के साथ जैमिनि ने भी प्रवेश किया।[1] पारीक्षित् जनमेजय (तृतीय) के नागयज्ञ में जैमिनि उद्गाता बने थे।[2]

जैमिनि और उनके शिष्य प्रशिष्य—सुमन्तु, लौगाक्षि, कुथुमि राणायन, ताण्ड्य आदि ने सामवेद की एकसहस्रशाखाओं का प्रवचन किया था। परन्तु यह भी ध्यातव्य है कि इनसे पूर्व हिरण्यनाभ कौसल्य और कृतसंज्ञकक्षत्रिय राजा ५००-५०० सामशाखाओं का प्रवचन कर चुके थे।

अथर्वाचार्य सुमन्तु--अथर्ववेद के प्रवचनकर्त्ता व्यासशिष्य सुमन्तु ने धर्मसूत्र, महाभारत, भाष्य आदि की रचना भी की थी। ये व्यासजी के चतुर्थ प्रधानशिष्य थे, जिन्होंने अथर्ववेद का सम्पादन किया। सुमन्तु की शिष्यपरम्परा में कबन्ध, पथ्य, देवदर्श, जाजलि, शौनक, मौद, पिप्पलाद आदि अनेक आचार्य हुए। अथर्ववेद की नौ शाखायें प्रथित हुई—पैप्पलाद मौद, शौनकीय, जाजल, दैवदर्श, चारणवैद्य, स्तौद, जलद और ब्रह्मवद। इस समय इस वेद के शौनकीय और पैप्पलादशाखा ही प्राप्य है।

प्रश्नोपनिषद् के अनुसार सुकेश भारद्वाज आदि छः स्नातक भगवान् पिप्पलाद के पास आत्मज्ञान सीखने गए।[3]

हरिवंशपुराण में उल्लिखित है कि श्रविष्ठा के दो पुत्र थे—पिप्पलाद और कौशिक[4], इन्होंने पाण्डववंशज अजपार्श्व या अधिसीमकृष्ण का वन में पालन पोषण किया और ये ही पुनः उसके मन्त्री हुए—"वेमक्याः स तु पुत्रोऽभूद् ब्राह्मणो सचिवौ च तौ" (हरिवंश ३।११।१५)।

---

(१) बको दाल्भ्यः स्थूलशिराः कृष्णद्वैपायनः शुकः।
सुमन्तुर्जैमिनिः पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम्॥ (सभापर्व)

(२) उद्गाता ब्राह्मणो वृद्धो विद्वान् कौत्सार्यजैमिनिः।
(आदिपर्व ४८।६)

(३) "सुकेशा च भारद्वाजः ...ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः।"

(४) "श्रविष्ठायाश्च पुत्रौ द्वौ पिप्पलादश्च कौशिकः।"
(हरि० ३।११।१२)

द्वितीय अध्याय

वेदाचार्यपरम्परा

कल्पसूत्रकार—पूर्व अध्याय में प्राग्भारतकालीन वेदाचार्यों का इतिवृत लिखा गया, इस अध्याय में उत्तरकालीन वेदाचार्यों एवं कल्पसूत्रकारों का इतिहास लिखा जायेगा।

षड् वेदाङ्गों में 'कल्प'[1] का महत्वपूर्ण स्थान था। कल्पग्रन्थ यज्ञविद्या के अनिवार्य साधन थे। कुमारिल के मत में विना वेद के याज्ञिक पुरोहित यज्ञ सम्पादन कर सकते थे, परन्तु बिना 'कल्प' के केवल मन्त्र और ब्राह्मण से नहीं कर सकते थे।[2] कल्पसूत्रकार आचार्य वेदवेदाङ्ग में पूर्णतः पारङ्गत होता था, उनकी भी ऋषितुल्य पूजा होती थी, उनकी ऋषि के समान ही प्रतिष्ठा थी, कोई अनृषि कल्पसूत्रकार हो ही नहीं सकता। इनका कृतित्व मन्त्रकार के समान ही था, प्रायः सभी सूत्रकार किसी वेदशाखा के प्रवक्ता भी थे, जैसा कि आगे वर्णन किया जाएगा—

न तावदनृषिः कश्चित् स्मर्यते कल्पसूत्रकृत्।
कर्तृत्वं यदृषीणां तु तत्सर्वं मन्त्रकृत्समम्॥

---

(१) प्राचीनकाल में 'पुराकल्प' नामक शास्त्र की बहुधा चर्चा मिलती है। ब्राह्मण-ग्रन्थ के दशविषयों में 'पुराकल्प' एक विशिष्ट विषय था। यह वेदभाग था, अथवा प्राचीनकल्पसूत्र का नाम था, अथवा कोई स्वतन्त्रशास्त्र था, यह निर्णय करना कठिन है। किसी ऐतिहासिकविधान को भी पुराकल्प कहते थे—

'ऐतिह्यसमाचरितविधिः पुराकल्पः (न्यायभाष्य २।१।६४)
श्रूयते पुराकल्पे नृणां वीहिमयः पशुः (महाभारत)
पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते (यमस्मृति)
श्रूयते पुराकल्पे गुरूननुमान्य यः (महाभारत)

राजशेखर ने 'महाभारतग्रन्थ' को पुराकल्प इतिहासभेद का उदाहरण बताया है।

(२) वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पैः कर्माणि याज्ञिकाः।
न तु कल्पैर्विना केचिन्मन्त्रब्राह्मणमात्रकम्॥

इतिहासपुराणों के अनुसार शिव और बृहस्पति वेदाङ्गों के प्रवर्तक थे। महाभारत में शिव के प्रति लिखा है—

'वेदात्षडङ्गान्युद्धृत्य,' (शान्तिपर्व २८४।१२)

इसी प्रकार बृहस्पति के सम्बन्ध में लिखा है—

"वेदाङ्गानि बृहस्पतिः" ; (शान्तिपर्व १२।३२)

वे स्वयं कहते हैं कि मैं कल्प, व्याकरण और शिक्षा का अध्ययन करके भी भूत-प्रकृति को नहीं जानता हूँ।[1]

इसी प्रकार तैत्तिरीयोपनिषद् में वरुण अपने पुत्र भृगु को वेदागों का उपदेश देते हुए दृष्टिगोचर होते है। इसी प्रकार के अन्य प्रसङ्ग मृग्य एवं उदाहार्य हैं। तात्पर्य है कि कल्प आदि वेदाङ्गों का निर्माण बृहस्पति, शिव आदि ने देवयुग में कर दिया था, ये कोई नवीनशास्त्र नहीं थे।

पाणिनिकाल में कल्पसूत्रों की भेदद्वयी—सभी पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान् कल्पसूत्रों का निर्माण पाणिनि से पूर्व मानते हैं। पाणिनि कल्पसूत्रों के कालनिर्धारण में स्तम्भतुल्य हैं। परन्तु हमारे मत में सूत्रकार और अन्य वेदाचार्यों के समयनिर्धारण में तीन प्रसिद्ध स्तम्भ माने जाने चाहिए। वे हैं—व्यास, शौनक और पाणिनि। समस्त उपलब्ध सूत्रग्रन्थ पाणिनि के पूर्वकालीन और व्यास के उत्तरकालीन हैं। परन्तु पाणिनि के समय व्यास से पूर्वकालीन सूत्रग्रन्थ भी उपलभ्य थे—

"पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु।"[2]

काशिका में जयादित्य ने लिखा है कि पुराणर्षि या चिरन्तनऋषि द्वारा प्रोक्त ब्राह्मण या कल्प हैं—भाल्लविब्राह्मण, शाट्यायनब्राह्मण, ऐतरेयब्राह्मण, पैङ्गीकल्प, आरुणपराजीकल्प। जयादित्य के मत में ऐतरेय।दि ऋषि पुरातन थे और याज्ञवल्क्य आदि अर्वाचीन (अचिरकालीन) ऋषि थे। इस भ्रम का मूल वार्तिकार कात्यायन का यह सूत्र था—"याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधस्तुल्यकालत्वात्।" पाणिनि ने याज्ञवल्क्य के विषय में कुछ नहीं कहा, क्योंकि उनको ज्ञात था कि यह सूत्र याज्ञवल्क्य के मूलनाम 'वाजसनेय' (यथा वाजसनेयिनः, वाजसनेयब्राह्मण) के साथ लगता था। वार्तिककार ने व्यर्थ की भ्रामक कल्पना याज्ञवल्क्य के साथ जोड़ दी, इसका स्पष्टीकरण हम 'वाजसनेय' के प्रसङ्ग में पहिले ही कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में पतञ्जलि का मत समीचीन है जो याज्ञवल्क्य, सौलभ आदि सभी को तुल्यकालीन मानते थे।

---

(१) अधीत्य च व्याकरणं सकल्पम्।
शिक्षां च भूतप्रकृतिं न वेद्मि॥ (शा० ।१९१।८)

(२) अष्टाध्यायी (४।३।१०५)

प्रतीत होता है कि जयादित्य ने ऐतिहासिक आख्यान ध्यान से नहीं पढ़े क्योंकि पैङ्गीकल्प का प्रणेता पैङ्गी मधुक आचार्य राथीतर शाकपूणि का शिष्य था, वह व्यासशिष्य पैल की शिष्यपरम्परा में सप्तम था और याज्ञवल्क्य वाजसनेय व्यास-शिष्य वैशम्पायन की शिष्यपरम्परा में प्रथम थे। अतः एक पीढ़ी को २५ वर्ष माना जाय, तब भी वाजसनेय पैङ्गी मधुक से लगभग १७५ वर्ष पूर्व हुए, वैसे यह अन्तर अधिक था, क्योंकि ऋषिगण दीर्घजीवी होते थे। इस दृष्टि से तो पैङ्गी की अपेक्षा वाजसनेय ही पुराणर्षि थे। वैसे शौनक आचार्य ने बृहद्देवता में मधुक, श्वेतकेतु आदि को पुराण कवि[1] माना है। श्री युधिष्ठिर मीमांसक के मत में पाणिनि ने 'पुराणप्रोक्तपद' द्वारा प्राक्पाराशर्यसूत्रग्रन्थों की ओर संकेत किया है।[2]

पाराशर्य व्यास की तिथि का निर्णय पहिले ही किया जा चुका है। (उनका समय कलि से २०० वर्ष पूर्व या विक्रम से ३२४४ वर्ष पूर्व था।)

पाणिनि की तिथि— पाणिनि की तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद दृष्टिगोचर होते हैं। डा० भण्डारकर विक्रम से ७०० वर्ष पूर्व पाणिनि का समय मानते थे। काशीप्रसाद जायसवाल ५०० ई० पू० नन्दकाल में पाणिनि को मानते थे। यद्यपि भारतीयदृष्टिकोण से (पुराणगणनानुसार) नन्द का समय १५०० वि० पू० था। डा० वासुदेवशरण डा० जायसवाल के मत का ही अनुमोदन करते हैं। उनके मतानुसार बौद्धग्रन्थ आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में कहा है—

तस्याप्यन्यतमः सख्यः पाणिनिनाम माणवः। (पृ० ४२७)

यहाँ पर नन्द का सखा पाणिनि नाम के माणव (विद्यार्थी) को बताया गया है, तथा कथासरित्सागर में वर्ष नामक आचार्य का शिष्य पाणिनि को बताया है।[3] तथा अग्रवालजी अष्टाध्यायी में उल्लिखित यवन, श्रमण, मस्करी, निर्वाणादि पदों को बौद्धप्रभाव से युक्त मानते हैं।[4] इन शब्दप्रमाणों (हेत्वाभासों) से डा० अग्रवाल पाणिनि को नन्दकाल में रखते हैं।

---

(१) उच्यन्ते नवभ्यः इति नैरुक्ताः पुराणःकवयश्च ये।
मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्वते॥ (बृ० १।२४)

(२) "सृष्टि के आदि से लेकर भगवान् वेदव्यास और उनके शिष्यप्रशिष्योंपर्यन्त वेदशास्त्रों का अनेक बार प्रवचन हुआ है.....; अतः हमारा विचार है कि पाणिनि के पुराणप्रोक्त शब्द से उन ब्राह्मणों की ओर संकेत है जिनका प्रवचन भगवान् वेदव्यास और उनके शिष्यप्रशिष्यों के प्रवचन से पूर्व हो चुका था - यह अभिप्रायः लाट्यायनश्रौत के पूर्वनिर्दिष्ट सूत्र के 'पुराण' पद का है।"
(सं० व्या० शा० इ० प्र० भाग पृ० १७४)।

(३) अथ कालेन वर्षस्य शिष्यवर्गो महानभूत्।
तत्रैकः पाणिनिर्नाम जडबुद्धितरोऽभवत्॥ (कथास० १।४।४०)

(४) पाणिनिकालीन भारतवर्ष, अध्याय ८।

इस मत के विरुद्ध हमारा अभिमत है कि इतिहासपुराणों में यवन म्लेच्छ क्षत्रिय ययातिपुत्रतुर्वसु की सन्तान बताए गए हैं।[1] यूनानियों की उपजातियाँ आयोनियन और डोरोनियन भी क्रमशः प्राचीन अनु (आनव) और द्रुह्यु क्षत्रियों की सन्तानें थीं। द्रुह्यु आदि के वंशज यवन सगर के समय से ही योरोप में उपनिविष्ट हो गए थे। महाभारतकाल में यवनों का सम्राट् कशेरुमान् या काल-यवन[2] था, जिसका वध वासुदेव कृष्ण ने चातुर्य से किया। अतः यवन शब्द पाणिनि के समय निर्धारण में असहायक है। श्रमण, निर्वाण आदि शब्द शतपथब्राह्मण एवं महाभारतादि इतिहासों में प्रचुरता से मिलते हैं। स्वयं बुद्ध और एवं प्रतिबुद्ध शब्द भी शतपथ और महाभारत में मिलते हैं। अतः ये शब्द भी पाणिनिकाल के निर्णायक नहीं हैं। और मस्करी शब्द बुद्धसमकालीन मंखलि गोशाल आचार्य का वाचक नहीं है, यह शब्द उसी प्रकार हैं जिस प्रकार दण्डी (दण्डयुक्त या डण्डेवाला पुरुष)। इसी प्रकार वेणु मस्करयुक्त परिव्राजक को 'मस्करी' कहते थे। यदि 'मस्करी' पद गोशाल मंखलि का वाचक होता तो सूत्ररचना इस प्रकार होती है 'मस्कर मस्करिणौ वेणुगोशालयोः' परन्तु पाणिनि सूत्र है—'मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः' (अष्टा ६।१।१५४) यहाँ 'परिव्राजक' किसी व्यक्तिविशेष का नाम नहीं, केवल सामान्य परिव्राजक (सन्यासी) का अभिधायक है।

अतः उपर्युक्त हेत्वाभासों से पाणिनि का समय निर्धारण नहीं हो सकता।

वेदाचार्य कुलपति शौनक और दीर्घसत्र का समय—व्यास के अनन्तर शौनक ने ही सर्वाधिक वैदिकवाङ्मय की रक्षा की। आचार्य शौनक व्यास के समान ही वैदिकसाहित्य के महान् स्तम्भ थे। शौनक एक बहुत प्राचीन गोत्रनाम था। इनका वंशवृक्ष इस प्रकार था—

भृगु
|
च्यवन
|
प्रमिति
|
रुरु
|
शुनक
|
शौनक

(१) आदिपर्व (८६।३५)। (२) हरिवंश (२।५७)।

अतः शौनकगोत्र अत्यन्त प्राचीन था, कुलपति शौनक इसी गोत्रनाम से प्रसिद्ध थे। गोत्रनाम होने से अनेक शौनकों में भेद करना कठिन है। परन्तु व्यास-शिष्य रोमहर्षण और उनके पुत्र सौति से पुराणश्रवणकरनेवाले शौनक संभवत दीर्घजीवी थे, उनकी आयु लगभग ३०० वर्ष माननी पड़ेगी। परन्तु पं० श्री गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, जो पूर्वयुगों में ऋषियों की आयु लाखों, करोड़ों वर्षों की मानते हैं, उन्हें शौनक की ३०० वर्ष की आयु मानने पर आपत्ति है। प्राचीन ऋषि तो दीर्घजीवी होते ही थे, परन्तु रसायनसेवन से कलियुग में नागार्जुन ६०० वर्ष जीवित रहा। अतः शौनक जैसे तपस्वी के लिए ३०० वर्ष जीवित रहना असंभव नहीं है (द्र० पातंजल महाभाष्यभूमिकाः गिरधरशर्मा तथा संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग)।

कुलपति शौनक का अन्तिम दीर्घसत्र, जिसमें वैदिक वाङ्मय और पुराणों का अन्तिम संकलन हुआ, भारतयुद्ध से लगभग ३०० वर्ष पश्चात् हुआ। यह समय पुराणों के प्रमाण से ही इस प्रकार निश्चित होता है—

मागध राजा-राज्यकाल		पाण्डववंश	ऐक्ष्वाकवंश
(१) सोमाधि	—५८ वर्ष	शतानीक	वृहत्क्षत्र
(२) श्रुतश्रवा	—६४ ,,	सहस्रानीक	उरुक्षय
(३) अयुतायु	—३६ ,,	अश्वमेधदत्त	वत्सव्यूह
(४) निरमित्र	—४० ,,		प्रतिव्योम
(५) सुक्षत्र	—५६ ,,		
(६) बृहत्कर्मा	—२३ ,,		
(७) सेनाजित्	— २३ ,,	अधिसीमकृष्ण	दिवाकर
कुलयोग	३०० वर्ष		

वायुपुराण, मतस्यपुराण जैसे प्रमुखपुराणों में उल्लिखित है कि, जब मगध में राजा सेनाजित के राज्यकाल का २३वाँ वर्ष चल रहा था, तब कुलपति शौनक का दीर्घसत्र प्रारम्भ हुआ, उसी समय हस्तिनापुर में अधिसीमकृष्ण और अयोध्या में दिवाकर राज्य कर रहे थे। द्रष्टव्य है—

अधिसीमकृष्णो धर्मात्मा सांप्रतोऽयं महायशाः।
यस्मिन् प्रशासति महीं युष्माभिरिदमाहृतम्।
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम्।
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥

(वा० पु० ९९।२५८-५९)

अतः कलिसम्वत् ३०० या २७४४ वि० पू० शौनक दीर्घसत्र कर रहे थे, इसी सत्र में उन्होंने अपने ऋक्प्रातिशाख्य आदि ग्रन्थ रचे—

शौनको गृहपतिर्वै नैमिषीयैस्तु दीक्षितैः ।
दीक्षामुचोदितः प्राह सत्रे तु द्वादशाहिके ॥

(ऋक्प्रा० विष्णुमित्रटीका)

शौनक सर्वशास्त्रविशारद एवं इतिहासपुराण तथा आरण्यक के महान् पण्डित थे—

नैमिषारण्ये कुलपतिः शौनकस्तु महामुनिः ।
सौतिं पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः ॥ (महा० १।१।४)
स चाप्यस्मिन् मखे सौते विद्वान् कुलपतिर्द्विजः ।
दक्षो धृतव्रतो धीमान् चारण्यके गुरुः ॥ (महा० १।१४।६)

शौनक सर्वशास्त्रविशारद विशेषतः वेदों के महान् विद्वान् थे। आश्वलायन[1] और कात्यायन[2] जैसे प्रख्यात वेदाचार्य शौनक के शिष्य थे।

आचार्य शौनक विरचित निम्नग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—

(१) बृहद्देवता
(२) ऐतरेयारण्यक
(३) कल्पसूत्र
(४) ऋक्प्रातिशाख्य
(५) ऋक्सर्वानुक्रमणी
(६) आथर्वणचतुरध्यायी
(७) ऋग्विधान
(८) चरणव्यूह

दीर्घसत्र, इतिहास की अप्रतिम घटना—पाराशर्य व्यासकृत वेदवाङ्मय यज्ञ के अनन्तर वाङ्मय के इतिहास में कुलपति शौनक का दीर्घसत्र सर्वाधिक ऐतिहासिक महत्व की अप्रतिम घटना थी। परन्तु आधुनिकइतिहासकार इसकी पूर्ण उपेक्षा करते हैं। आजकल भारतीयइतिहास की पुस्तकों में बौद्धसंगीतियों का बड़े जोरशोर से वर्णन किया जाता है, परन्तु ये संगीतियाँ दीर्घसत्र के सम्मुख बहुत छोटी घटनायें थीं। परन्तु व्यास या शौनक के वाङ्मययज्ञ का आधुनिक

---

(१) "शौनकस्य तु शिष्योऽभूद्भगवानाश्वलायनः" (षड्गुरुशिष्य)

(२) शौनकस्य प्रसादेन कर्मज्ञःसमपद्यत ।
कात्यायनमुनिर्मेने त्रयोदशकमत्र तु ॥ (सर्वानुक्रमणीटीका) ।

पुस्तकों में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलेगा, यह भारत की घोर विडम्बना है। शौनक के दीर्घसत्र में ८८००० ऋषि मुनि एकत्र हुए थे, जबकि बौद्धसंगीतियों में ५०० या ७०० बौद्धभिक्षु। दीर्घसत्र के पश्चात् ऋषियों का युग समाप्त हो गया, जैसाकि यास्क ने निरुक्त में संकेत किया है।[1]

पाणिनि की तिथि निर्धारण करने में शौनक का दीर्घसत्रकाल सहायक है। वैदिककल्पसूत्रों का प्रणयन अधिकांशतः दीर्घसत्रकाल के आसपास ही हुआ। यास्क, शौनक, पिङ्गल, मधुक, कौत्स, भागुरि कात्यायन, बौधायन, आश्वलायन और पाणिनि आदि आचार्य प्रायेण समकालिक थे, पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने इनकी समकालिकता के सम्बन्ध में निम्न तर्क दिए हैं, जो पर्याप्त प्रामाणिक प्रतीत होते हैं—(१) पाणिनि का अनुज 'उरोबृहतीयास्कस्य' सूत्र में यास्क का स्मरण करता है (२) निरुक्तशास्त्र (१।५) में यास्क ने कौत्स आचार्य के मत उद्धृत किए हैं कौत्स पाणिनि का शिष्य था। (३) पाणिनि ने 'शौनकादिभ्यश्छन्दसि', (अष्टा० ४।३।१०६) सूत्र में शौनक का नाम लिया है। (४) शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य में व्याडि आचार्य के मत प्रदर्शित किए हैं, यह व्याडि अपर नाम दाक्षायण पाणिनि का मातुल था। (५) बौधायनश्रौत सूत्र, प्रवराध्याय में पाणिनि का साक्षान्निर्देश मिलता है, इसी प्रकार मत्स्यपुराण (१९७।१०) और वायुपुराण (९१।९९) में पाणिनिगोत्र का उल्लेख है। अतः पाणिनि आर्षकाल के आचार्य थे, यही प्रकट होता है तथा यास्क, शौनक, बौधायन पाणिनि आदि प्रायः सभी तुल्यकालीन थे, उनमें पौर्वापर्य अतिन्यून था।

शौनक का समय पूर्वपृष्ठों पर निर्धारित किया जा चुका है, २७४४ वि० पू०, अतः इसी समय के आसपास पाणिनि हुए अतः आपस्तम्ब, कात्यायन, बौधायन, आश्वलायनादि, जो अधिकतर शौनक के शिष्य थे, इन सूत्रकारों का समय भी २७०० वि० पू० के लगभग था।

पाश्चात्य लेखकों ने सूत्रकारों का युग भिन्न भिन्न माना है। मैक्समूलर ने सूत्रयुग ६०० ई० पू० से २०० ई० पू० माना है। मैकडोनल और कीथ ५०० ई० से २०० ई० पू० इनका समय मानते थे।[2]

इन निराधार एवं निरर्थक कल्पनाओं का कोई मूल्य न होने से अविचारणीय हैं।

---

(१) मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्, को न ऋषिर्भविष्यति।
तेभ्य एते तर्कमृषि प्रायच्छन्॥ (निरुक्त)

(2) "We shall, therefore, probably not go very wrong in assigning 500 and 200 B. C. as the chronological limits within which the sutra literature was developed". (A History of Skt. Lit. by A. Macdonell, p. 35)

सूत्रकारों का ऐतिहासिक क्रम—पाश्चात्य लेखकों की दृष्टि में सत्रकार बौधायन प्राचीनतम आचार्य थे, जैसा कि वेबर[1] ने क्रम रखा है—

बौधायन
|
भारद्वाज
|
आपस्तम्ब
|
हिरण्यकेशी
|
वाधूल
|
वैखानस

श्री पाण्डुरङ्ग वामनकाणे ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में, पृ. ४ पर सत्रकारों का यह क्रम रखा है—

बौधायन
|
गौतम
|
आपस्तम्ब
|
हिरण्यकेशी
|
आश्वलायन इत्यादि ।

श्रीकाणेजी ने सूत्रकारों का कोई विशेषसमय निर्धारित नहीं किया, केवल उन्हें चतुर्थशती ई० पू० रखा है ।

कालेण्ड नाम के पाश्चात्य वैदिकविद्वान् ने सूत्रकारों का ऐतिहासिकक्रम इस प्रकार माना है—

---

(1) "Mahadev, a commentator of the Kalpasutra of Satyaashatha Hiranyakeshi, when enumerating the Taittiriya Sutras in successive order in his introduction, leaves out these four altogether, and names at the head of list the Sutra of Bodhayan as the oldest, that of Bhardwaja, next that of Apastamba, next that of Hiranyakeshi, himself and finally two names, not otherwise mentioned in this connection, Vadula and Vaikhanasa".
(The History of Indian Lit. A. Weber, p. 99—100)

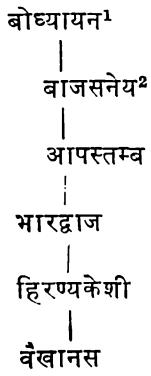

पं० भगवद्दत्त के मत में उपर्युक्त क्रम इतिहास विरूद्ध किंवा निराधार है। इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित हेतुहेतुमत्प्रमाण दिए हैं—(१) बौधायन ने अपने प्रवराध्याय में वैयाकरण पाणिनि का उल्लेख किया है, पाणिनि के गणपाठ (४।३।१०६) में वाजसनेय स्मृत है, अतः पाणिनि बौधायन ने पूर्वकालिक है तथा वाजसनेय (याज्ञवल्क्य) तो बहुत पूर्वकालीन आचार्य थे, जो कि व्यास के प्रशिष्य एवं वैशम्पायन के अन्तेवासी (विद्यार्थी) थे, यह पूर्व प्रतिपादित किया जा चुका है। वाजसनेय ने सूत्र एवं शतपथब्राह्मण का प्रणयन भारतयुद्ध से पूर्व ही कर दिया था, यह सिद्ध है।

प्रवराध्याय में पाणिनि के उल्लेख से बौधायन अर्वाचीनतम सूत्रकार सिद्ध होते हैं। अपने धर्मसूत्र में बौधायन आपस्तम्ब आदि सूत्रकारों का भी तर्पण करता है—"काण्वं बौधायनं तर्पयामि, आपस्तम्बं सूत्रकारं तर्पयामि, सत्याषाढ़ं हिरण्यकेशिनं तर्पयामि, वाजसनेयिनं याज्ञवल्क्यं तर्पयामि आश्वलायनं शौनकं तर्पयामि। व्यासं तर्पयामि"।[3]

उपर्युक्त वाक्य में उल्लिखित काण्व बौधायन शुक्लयजुःशाखा प्रवक्ता और वाजसनेय का शिष्य था, अतः यह सूत्रकार बौधायन से भिन्न था। प्रपञ्चहृदय (पृ. ३६) में बौधायनकृत 'विंशत्यध्यात्मककृतकोटिनामधेय मीमांसाभाष्य' का उल्लेख मिलता है, इस भाष्य का संक्षेप आचार्य उपवर्ष ने किया था, यह उपवर्ष पाणिनिगुरुवर्ष के भ्राता थे, अतः पाणिनि के समकालीन थे, अतः पं० भगवद्दत्त द्वारा विनिर्दिष्ट, सूत्रकारों का यह क्रम ही सत्य एवं प्रामाणिक है—

---

(१) द्रष्टव्य—कालेण्डकृत वैखानसश्रौतसूत्र की भूमिका, पृ. ६४।

(2) That the Sutra of Baudhayana must have been known to the authors of Vajasanaya Brahman (p. 98)

(३) (बौ० ध० २।५।६।१४)।

कृष्णद्वैपायन व्यास
|
सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल[1]
|
वाजसनेय याज्ञवल्क्य, औपमन्यव
|
शाकटायन
|
शाम्बव्य
|
यास्क
|
शौनक
|
आश्वालायन, गौतमादि
|
गोभिल, मशकादि
|
आपस्तम्ब, सत्याषाढ़
|
कात्यायन, पाणिनि
|
बौधायन[2]

हम, सूत्रकारों को दो विभागों विभाजित करते हैं, प्रथम वे सूत्रकार जिनके सूत्रग्रन्थ अनुपलब्ध है, द्वितीय, वे जिनके सूत्रग्रन्थ उपलब्ध हैं। निम्न सूत्रकारों का संक्षेप में परिचय लिखेंगे—

(१) पैल
(२) सुमन्तु
(३) पाराशर
(४) शाम्बव्य
(५) यास्क
(६) पैङ्गय
(७) जातूकर्ण्य
(८) शौनक

---

(१) सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारताचार्याः (आश्व० गृ० ३।३।५)।

(२) भा० बृ० इ० प्र० भाग, पृ० २४०, २४२।

(९) वैशम्पायन
(१०) आसुरि
(११) हारीत
(१२) जाबाल
(१३) कठ
(१४) कालाप
(१५) काश्यप
(१६) आरुणपराजी
(१७) आश्मरथ्य
(१८) आलेखन
(१९) धनञ्जय सुषामा
(२०) गौतम
(२१) भाल्लवि
(२२) शाण्डिल्य

पैल—यह प्रथम और प्रधान व्यासशिष्य थे, जिन्होंने ऋग्वेद की शाखा का प्रवचन किया। कौषीतकि[1], शौनक और आश्वलायन[2] ने पैल को सूत्रकार, भाष्यकार, भारताचार्य एवं महाभारताचार्य के रूप में स्मृत किया है। पाणिनिसूत्र[3] में इनकी माता 'पीला' का स्मरण किया गया है, जिससे ये 'पैल' कहलाए। इनके पिता का नाम वसु था।[4]

इस समय पैलाचार्य का सूत्रग्रन्थ अनुपलब्ध है।

सुमन्तु—सुमन्तुधर्मसूत्र के कुछ अंश प्रकाशित हो चुके हैं। जिनको श्रीचिन्तामणिवैद्य ने संकलित करके प्रकाशित किया है। सुमन्तु ने प्राचीन सूत्रकार शंख और आंगिरस का स्मरण किया है। इनका शिष्य कबन्ध आथर्वण[5] बृहदारण्यकोपनिषद् में स्मरण किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि सुमन्तु ने शतपथ ब्राह्मण रचनाकाल से पूर्व सूत्र रचे थे।

---

(१) कौषीतकिगृह्यसूत्र (२।५।३)
(२) आश्वलायनगृह्यसूत्र (३।३।५)
(३) 'पीलाया वा' (अष्टा० ४।१।११८)
(४) पैलो होता वसोः पुत्रः। (सभा० ३६।३५)
(५) सोऽब्रवीत् कबन्ध आथर्वण इति...(बृ० इ० ३।७।१)।

पराशर—पैलशिष्य वाष्कल के चार शिष्यों में एक 'पाराशर' भी थे, यह गोत्र नाम है। इन्हीं पाराशर ने ऋग्वेद की 'पाराशरशाखा' का प्रवर्तन किया था और कल्पसूत्र की रचना की। पतञ्जलि ने महाभाष्य (४।२।६०) में 'पाराशर-कल्प' का उल्लेख किया है—'पाराशरकल्पिकः'।

जातूकर्ण्य—उपर्युक्त पाराशर के सतीर्थ्य (वाष्कलशिष्य) कोई जातूकर्ण्य थे, जिन्होंने ऋग्वेद की जातूकर्ण्यशाखा के साथ जातूकर्ण्यकल्पसूत्र की रचना की थी।[1] कविराज सूरमचन्द[2] ने उपर्युक्त पाराशर और जातूकर्ण्य को पाराशर्य कृष्णद्वैपायन व्यास के पिता और गुरु मानने की महान् भूल की है, भला पैल व्यासजी के शिष्य थे, उनके प्रशिष्य पाराशर और जातूकर्ण्य व्यासजी के पिता और गुरु कैसे हो सकते हैं, ऐसी भूल तो मूर्ख भी नहीं कर सकता। सच यह है कि पाराशर और जातूकर्ण्य गोत्रनाममात्र थे, इन नामों के सैंकड़ों व्यक्ति हुए थे, अतः सत्य को समझना चाहिए।

शाम्बव्य—इनका सम्पूर्ण कल्पसूत्र प्राप्य नहीं है, केवल 'कौषीतकि गृह्य-सूत्र प्रकाशित है जैसाकि उल्लिखित है—

नत्वा कौषीतकाचार्यं शाम्बव्यं सूत्रकृत्तमम् ॥
गृह्यं तदीत्यं संक्षिप्य व्याख्यास्ये बहुविस्तरम् ॥
(शाम्बव्यगृह्यकारिका, प्रारम्भ)

शाम्बव्य के कल्पसूत्र में २४ अध्याय थे, जैसा कि जैमिनीयश्रौतभाष्य में भवत्रात ने कहा है—"तदेव चतुर्विंशत्यवदत् शाम्बव्यः"। पाणिनि गर्गादिगण में 'शम्बु' नाम पठित है, जिससे ज्ञात होता है कि 'शाम्बव्य' अपत्यनाम था और इनके पिता का नाम 'शम्बु' था। शाम्बव्य का नाम संभवतः 'कुषीतक' था, जिससेकि उनके सूत्र को 'कौषीतक' कहते थे। याज्ञवल्क्य वाजसनेय के समकालीन कहोड कौषीतकि[3] कुषीतक (शाम्बव्य) का पुत्र था। यह कहोड वाजसनेय का सतीर्थ्य (उद्दालक आरुणि का शिष्य) था। कहोड वाजसनेय का जामाता भी थे और इनके प्रसिद्ध पुत्र अष्टावक्र औषनिषदिक आचार्य थे। अष्टावक्र के मातुल श्वेतकेतु भी प्रसिद्ध

(१) जातूकर्ण्यधर्मसूत्र के वचन याज्ञवल्क्यस्मृति की बालक्रीडा टीका मे प्राप्य होते हैं।

(२) ऋग्वेद का अध्येता पैल था। उसका शिष्य वाष्कल था। वाष्कल के चार शिष्यों में एक पराशर था। उसने पराशर (पाराशर) संहिता का प्रवचन किया। उसका प्रोक्त ब्राह्मण और कल्प भी हो सकता है। वह एक व्यास था। (आयुर्वेद का इतिहास, पृ० २१४)।

(३) "अथ हैनं कहोलः कौषीतकेयः पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच"। (बृ० उ० ३।५।१)

उपनिषत्कालीन ऋषि थे। ये सभी आचार्य महाभारतयुद्ध से पूर्व हो चुके थे।[1] अतः इनका समय ३०४४ वि० पू० से भी कुछ पूर्व था।

कुषीतक शाम्बव्य की प्राचीनता और समय इस प्रमाण से सिद्ध है कि जब युद्ध के पश्चात् धृतराष्ट्र ने वानप्राथ के लिए प्रस्थान किया तो कुरुदेश में ही शाम्बव्यआचार्य ने धृतराष्ट्र को अर्थपूर्ण उपदेश दिया—

ततः स्वाचरणो विप्रः सम्मतोऽर्थविशारदः।
शाम्बव्यो बह्वृचो राजन् वक्तुं समुपचक्रमे ।।[2]

उक्त प्रमाण से शाम्बव्य ऋग्वेदशाखा के प्रवक्ता और कल्पसूत्र के रचयिता सिद्ध होते हैं।

यास्क—प्रख्यात निरुक्तकार यास्कर्षि ने किसी कल्पसूत्र का प्रणयन किया था—'कल्प इति ज्योतिष्टोमाद्यनुष्ठानपद्धतियास्कवाराहबौधायनीयाः।' अपने युग में यास्क महान् याज्ञिक थे, जिन्होंने अनेक यज्ञ सम्पन्न कराए थे। उनके यज्ञ भारतयुद्ध से पूर्व हो चुके थे।[3]

पैङ्गयमधुक—जयादित्य ने काशिका में "पैङ्गीकल्प' पुराणप्रोक्तकल्पों में परिगणित किया है। पैङ्गी के पिता का नाम पिङ्गि था, अतः इनको पैङ्गी कहते थे, इनका नाम 'मधुक' था शतपथब्राह्मण और बृहद्देवता[4] में मधुक का बहुधा उल्लेख मिलता है। आपस्तम्ब ने पैङ्गायनिब्राह्मण का उल्लेख किया है।[5]

शौनक—कुलपति शौनक ने एक विशाल कल्पसूत्र रचा था, यह तथ्य षड्गुरुशिष्य ने प्रकट किया है—

---

(१) उद्दालकस्यनियतः शिष्य एको नाम्ना कहोलेति बभूव राजन्।
तस्मै प्रादात्सद्य एव श्रुतं च भार्यां च वै दुहितरं स्वां सुजाताम् ।।
अस्मिन् युगे ब्रह्मकृतां वरिष्ठावास्तां मुनि मातुलभागिनेयौ।
अष्टावक्रश्च कहोलसुनुरौद्दालकिः श्वेतकेतुः पृथिव्याम् ।।
अष्टावक्रः प्रथितो मानवेषु अस्यासीद्वै मातुलः श्वेतकेतुः।
(महा० वन० १३४।४, ६, १२)

(२) महा० आश्रमवासिक पर्व (१०।११)

(३) यास्को मामृषिरव्यग्रो नैकयज्ञेषु गीतवान्।
स्तुत्वा मां शिपिविष्ट इति यास्क ऋषिरुदारधीः।
मत्प्रसादादधो नष्टं निरुक्तमधिजग्मिवान् ।। (शान्ति० ३४२।७२-७३)

(४) मधुकः श्वेतकेतुश्च गालवश्चैव मन्वते। (बृह० १।२४)

(५) आप० श्रौ० (५।१५।८)

शौनकस्य तु शिष्योऽभूद् भगवानाश्वलायनः ।
स तस्माच्छ्रुतसर्वज्ञः सूत्रं कृत्वा न्यवेदयत् ।।
प्रबोधपरिशुद्धयर्थं शौनकस्य प्रियं त्विति ।
सहस्रखण्डं स्वकृतं सूत्रं ब्राह्मणसन्निभम् ।
शिष्याश्वलायनप्रीत्यै शौनकेन विपाटितम् ।।[1]

"शौनकस्य का भाग्यशाली शिष्य आश्वलायन था । आश्वलायन ने गुरु शौनक से विद्या ग्रहण की । शौनक के प्रिय होने के कारण आश्वलायन ने प्रबोध और परिशुद्धि के लिए स्वरचितसूत्र दिखाया, तब गुरु शौनक ने शिष्य आश्वलायन की प्रीति के लिए ब्राह्मणग्रन्थसदृश एवं सहस्रखण्डात्मक अपना कल्पसूत्र नष्ट कर दिया ।" यह संभव है कि शौनककल्प के कुछ अंश नष्ट होने से बच रहे हों ।

ऐतरेय—ऐतरेयब्राह्मण के प्रणेता महीदासऐतरेय ने किसी कल्पसूत्र की रचना भी की थी, जैसा कि निम्न प्रमाण से ज्ञात होता है—

नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः ।
आपस्तम्बषडित्याहुर्विभाषामैतरेयिणः ।। (शिवस्वामी)

आसुरि—पतञ्जलि ने महाभाष्य (४।१।१६) में आसुरिकल्प का स्मरण किया है, जो अनुपलब्ध है । शतपथब्राह्मण[2] के वंशपाठ में 'आसुरि आसुरायण' आचार्यों का एकाधिक बार उल्लेख है । दोनों ही आचार्य पाराशर्यव्यास एवं उनके गुरु जातूकर्ण्य के पूर्ववर्ती आचार्य थे । अतः इनका समय भारतयुद्ध से पाँचशतीपूर्व सिद्ध होता है ।

यही आसुरि जो पहिले याज्ञिक और कल्पसूत्रकार थे, जीवन के उत्तरकाल में सांख्यप्रणेता कपिल के प्रथम शिष्य हो गए, जिन्होंने लोक में सांख्य का प्रचार किया ।

वैशम्पायन चरकाचार्य—'दुष्कृताय चरकाचार्याय'[3] इस प्रकार वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने अपने गुरु चरकाचार्य वैशम्पायन का शुक्लयजुर्वेद में स्मरण किया है । आश्वलायनादि ने वैशम्पायन को 'सूत्राचार्य' कहा है, अतः इन्होंने किसी कल्पसूत्र की रचना की थी, जो अनुपलब्ध है ।

जैमिनि—आचार्य जैमिनि का परिचय पूर्वपृष्ठों पर वेदाचार्यों के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है कि इन्होंने जैमिनीयसामशाखा, जैमिनीयब्राह्मण, कल्पसूत्र और मीमांसासूत्र लिखा । इनका श्रौतसूत्र उपलब्ध है ।

---

(१) द्रष्टव्य—ए शेन्ट हिस्ट्री ऑफ सं० लिट० मैक्समूलर, पृ० २१०-२१२
(२) जातूकर्ण्य आसुरायणाच्च यास्काच्चासुरायणस्त्रैवणेस्त्रैवणिरौपजन्धनेरौपजन्धनिरासुरेरासुरिभारद्वाजाद् , (बृ० ड० ४।६।३) ।
(३) वाज० सं० (३०।१८)

जाबाल—यह उपनिषदों में प्रख्यात 'सत्यकाम जाबाल' था। इसकी माता का नाम 'जाबाला' था। इन्होंने शुक्लयजुवद की जाबालशाखा, जाबालब्राह्मण, जाबालकल्प और धर्मसूत्र की रचना की थी, इस समय ये सब अनुपलब्ध हैं। जाबाल की गुरुपरम्परा बृहदारण्यकोपनिषद्[1] में मिलती है।

कठ, कालाप, काश्यप, आरुणपराजी, आश्मरथ्य, आलेखन, धनंजय, गौतम, भाल्लवि, शण्डिल्य।

हारीत—बृहदारण्यक (४।६।३) में कुमारहारीत नाम के आचार्य का नाम निर्दिष्ट है। हारीत एक गोत्र नाम था। हारीतकृत श्रौत, गृह्य एवं धर्मसूत्रों के निर्देश एवं उद्धरण अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं। एक हारीत आयुर्वेदसंहिता का कर्त्ता था। इन दोनों हारीतों में एकता स्थापित करने के कोई प्रमाण नहीं हैं। इस सम्बन्ध में कविराज सूरमचन्द ने अनेक निस्सार एवं व्यर्थ की कल्पनायें की हैं।[2]

कठ—प्राचीनकाल में वैदिक कठसम्प्रदाय अत्यधिक प्रसिद्ध था। मूलतः कठ एक जनपद एवं गोत्र नाम था। इस जनपद के क्षत्रिय अत्यन्त शूरवीर थे, एवं ब्राह्मण अत्यन्त विद्वान्।

वैशम्पायन के नौ शिष्यों में से कठ अति प्रतिष्ठित था। पतञ्जलि ने महाभाष्य (४।२।६६) में लिखा है—

'यथेह भवति पाणिनीयं महत् सुविहितम्,
इत्येतमिहापि स्यात् कठं महत् सुविहितमिति'।

जिस प्रकार वैयाकरणों में पाणिनि सम्प्रदाय का महान् सुसंविधान (नियमादि) हैं, इसी प्रकार कठ सुविहित है। कठों की काठकसंहिता, श्रौतसूत्र, ब्राह्मणग्रन्थ, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, उपनिषदादि सभी प्रसिद्ध थे। आज काठकसंहिता, कठोपनिषद् एवं कठगृह्यसूत्र प्रकाशित उपलब्ध हैं।

कालाप—कठों का प्रतिद्वन्द्वि 'कालाप' सम्प्रदाय था। लेकिन इसकी ख्यातिमात्र अन्यग्रन्थों में ही है। कालाप का कोई ग्रन्थ प्राप्य नहीं है।

---

(१)
(१) उद्दालक आरुणि — (५) चूल भागवित्ति
(२) वाजसनेय याज्ञवल्क्य — (६) जानकि आयस्थूण
(३) मधुक पैङ्गय — (७) जाबाल सत्यकाम
(४) चूलो भागवित्ति

(२) आयुर्वेद का इतिहास, पृ० २१९-२०।

ताण्ड्य—एक सामवेदीय आचार्य थे, जिन्होंने ताण्ड्यब्राह्मण का प्रवचन किया, इसको पंचविंशतिब्राह्मण भी कहते हैं, जो २५ अध्यायों में प्रकाशित है। इनका कोई सूत्रग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

काश्यप—पाणिनि के सूत्र[1] से ज्ञात होता है कि काश्यप द्वारा प्रोक्तसूत्र को अध्ययन करने वाले 'काश्यपिन' कहे जाते थे—जयादित्य ने काशिका (४।३।१०३) में लिखा है—

'काश्यपेन प्रोक्तं कल्पमधीयते काश्यपिनः' (इत्युच्यन्ते)।

काश्यप आचार्य एवं कल्पसूत्र के विषय में इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं है।

आरुणपराजी—काशिका में पुराणप्रोक्त कल्पसूत्रकर्त्ताओं में यह नाम उल्लिखित है। शुद्धनाम 'आरुणपराशर' प्रतीत होता है।

आश्मरथ्यालेखन—आचार्यद्वयी—इन दोनों ही आचार्यों का प्रायः द्वन्द्व उल्लेख कृष्णयजुर्वेद के कर्मकाण्डसम्बन्धीग्रन्थों में प्रख्यात था। इन दोनों के मत भारद्वाज श्रौतसूत्र एवं आपस्तम्बश्रौतसूत्र में बहुधा दृष्टिगोचर होते हैं। भारद्वाज श्रौतसूत्र के सम्पादक श्रीकाशिकरजी ने लिखा है—'तत्र आश्मरथ्यालेखन संज्ञकयोराचर्ययोर्मतनिर्देशो न केवलं भारद्वाजसूत्रेऽपि तु अन्येष्वपि सूत्रेषु तट्टीकासु चोपलभ्यते। भारद्वाजश्रौतसूत्रगृह्यपरिशेषसूत्रेषु च यथैतयोर्निर्देशो वाहुल्येनोपलभ्यते तथैवापस्तम्बसूत्रेऽपि ।।'.....आश्मरथ्यालेखनयौरैतिह्ये विचार्यमाणे बौधायन प्रवरसूत्रे वासिष्ठगोत्रीये कुण्डिनगणे आश्मरथस्तथा च भृगुगोत्रीये वत्सगणे आलेखनाः निर्दिष्टा। कात्यायनप्रवरसूत्रानुसारेण आश्मरथ्याः विश्वामित्रगोत्रेऽन्तर्गताः[2]।'

धानांजयसुषामा—लाट्यायनश्रौतसूत्र में धानाञ्जय आचार्य का मत बहुधा उद्धृत किया गया है। यह एक गोत्रनाम प्रतीत होता है। महाभारत आदिपर्व (२।३६।२४) में सुषामा धानाञ्जय स्मृत है—

"धनञ्जयानामृषभः सुषामा स्मृतः"

अतः यह आचार्य महाभारतकालीन थे।

इनका सम्बन्ध सामवेद से था, परन्तु इनका कल्पसूत्र अनुपलब्ध है।

लाट्यायन और द्राह्यायण—ये दोनों सामवेद के आचार्य थे। लाट्यायन श्रौत प्राप्य है। द्राह्यायण का गृह्यसूत्र प्रकाशित है लाट्यायन के श्रौतसूत्र में शाण्डिल्य और शाट्यायन आदि आचार्यों के नाम एवं मतनिर्देश उपलब्ध होते हैं। ये सभी सामवेद के कल्पनिर्माता थे, जिनके सूत्रग्रन्थ अनुपलब्ध है। यह गौतम भी एक प्रसिद्ध सामवेदीय आचार्य थे, जिनका धर्मसूत्र विख्यात है।[3]

---

(१) काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः (अष्टा० ४।३।१०३)
(२) भारद्वाजश्रौतसूत्र, प्रस्तावना, पृ० २४-२५।
(३) स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्यामुपयामं भवन्तमिति (छा० उ० ४।४।३)।

उपलब्ध कल्पसूत्र और उनके कर्त्ता

इस समय निम्नलिखित कल्पसूत्र या उनके अंश या भाग उपलब्ध हैं—

ऋग्वेद के दो कल्पसूत्र ग्रन्थ—

(१) आश्वलायनकल्पसूत्र
(२) शांखायनकल्पसूत्र

कृष्णयजुर्वेद के आठ कल्पसूत्र—

(१) भारद्वाजकल्पसूत्र
(२) वाराहकल्पसूत्र
(३) सत्याषढ़ या हिरण्यकेशीयकल्पसूत्र
(४) आपस्तम्बकल्पसूत्र
(५) बौधायनकल्पसूत्र
(६) मानवकल्पसूत्र
(७) वाधूलश्रौतसूत्र
(८) वैखानसश्रौतसूत्र

शुक्लयजुर्वेद का एकमात्र कल्पसूत्र (श्रौतसूत्र) प्राप्य है—

(१) कात्यायनश्रौतसूत्र

कात्यायनकल्प का श्रौतसूत्र पृथक् ही प्रकाशित है। इसके गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र आदि अनुपलब्ध है।

सामवेद के तीन कल्पसूत्र प्रसिद्ध हैं—

(१) लाट्यायनश्रौतसूत्र
(२) जैमिनीयश्रौतसूत्र
(३) माशकश्रोतसूत्र

अथर्ववेद का एकमात्र 'वैतान' श्रौतसूत्र प्राप्य है। इनके अतिरिक्त अनेक गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, शुल्वसूत्र एवं पितृमेधसूत्र प्रकाशित एवं उपलब्ध हैं, इनमें से ये कुछ विख्यात हैं—

(१) शाम्बव्यगृह्यसूत्र
(२) शांखायनगृह्यसूत्र
(३) वैजवापगृह्यसूत्र
(४) काठकगृह्यसूत्र
(५) कौषीतकिगृह्यसूत्र
(६) पारस्करगृह्यसूत्र
(७) लौगाक्षिगृह्यसूत्र
(८) अग्निवेशगृह्यसूत्र
(९) कौथुमगृह्यसूत्र
(१०) खादिरगृह्यसूत्र
(११) कौशिकसूत्र
(१२) शौनकगृह्यसूत्र

(१) आश्वलायन— आश्वलायन कल्पसूत्र के दो अंश पृथक् पृथक् प्रकाशित हैं—आश्वलायन और श्रौतसूत्र एवं आश्वलायन गृह्यसूत्र ।

बृहादण्यकोपनिषद् (४।१।३६) में अश्वल नाम के आचार्य का उल्लेख मिलता है जो वैदेहजनक के होता (ऋग्वेदीय) आचार्य थे, इनके पुत्र या पौत्र आश्वलायन थे । स्पष्ट है आश्वलायन एक गोत्र नाम बन गया था । यह पहिले ही बताया जा चुका है कि आश्वलायन, कुलपति शौनक के वरिष्ठ शिष्य थे, जिन्होंने अपने कल्पसूत्र को आश्वलायन की प्रसन्नताहेतु नष्ट कर दिया था । शौनक ने बृहद्देवताग्रन्थ में अपने शिष्य आश्वलायन के मत उद्धृत किये हैं । आश्वलायनकृतश्रौतसूत्र में १२ अध्याय और गृह्यसूत्र में ४ अध्याय हैं ।[1]

आश्वलायन श्रौतसूत्र के द्वादश अध्यायों की विषयसूची इस प्रकार है— प्रथम अध्याय में-- परिभाषा और दर्शपूर्णमास यज्ञ, द्वितीय अध्याय में अग्न्याधान, पुनराधान, अग्निहोत्र, अग्न्युपस्थान, पिण्डपितृयज्ञ, अन्वारम्भणीयेष्टि, अग्रायण, काम्येष्टि, दाक्षायणयज्ञ और चातुर्मास्य । तृतीय अध्याय में निरूढ़पशुबन्ध सौत्रामणी और प्रायश्चित्त । चतुर्थ और पञ्चम अध्यायों में—अग्निष्टोम । षष्ठाध्याय में उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र और प्रायश्चित । सप्तम अध्याय में षडहादि । अष्टम में—सत्र, नवम में राजसूय, एकाह और वाजपेययज्ञ । दशम में अहीन, द्वादशाह और अश्वमेध । एकादश में रात्रिसत्र और गवामयन तथा द्वादश अध्याय में दीर्घसत्र और प्रवरगोत्रविवरण ।

आश्वलायनगृह्यसूत्र में चार अध्याय हैं । ये अध्याय अनेक खण्डों में विभक्त हैं । प्रथम अध्याय में षोडश संस्कारों का वर्णन है । द्वितीय में प्रकीर्णक विषय एवं पाकयज्ञों का निरूपण है, तृतीय अध्याय में वेदाध्ययन एवं अनध्याय सम्बन्धीनियम एवं चतुर्थ अध्याय में और्ध्वदैहिक संस्कारों तथा श्राद्ध का विधान है ।

(२) शांखायन— कुछ विद्वान् कौषीतकि (कहोड) और शांखायन इन दोनों आचार्यो एवं उनके ग्रन्थों को भ्रान्तिवश एक ही समझते रहे । अब यह प्रामाणित है कि ये दोनों आचार्य पृथक् पृथक् थे और इन्होंने पृथक् पृथक् चरणों की स्थापना की थी तथा इनके ग्रन्थ (यथा ब्राह्मण एवं सूत्र) भी पृथक् पृथक् थे ।

कौषीतकि कहोड प्रसिद्ध दार्शनिकप्रवर अष्टावक्र के पिता थे, जो भारत युद्ध से पूर्व ख्याति अर्जित कर चुके थे । कौषीतकि ने कौषीतकिब्राह्मण, कौषीतकि उपनिषद् एवं कौषीतकिगृह्यसूत्र आदि ग्रन्थ रचे । ये ऋग्वेदीय आचार्य थे ।

भारतयुद्ध से एक युगपूर्व (३६० वर्ष पहिले) पांचाल ब्रह्मदत्त के समकालीन शंख और लिखित नाम के दो धर्माचार्य हुए, इनकी धर्मकथा महाभारत में वर्णित

(१) द्वादशाध्यात्मकं सूत्रं चतुष्कं गृह्यमेव च ।
चतुर्ष्वारण्यकं चेति ह्याश्वलायनसूत्रकम् ।।

है। ब्रह्मदत्त शन्तनुपिता प्रतीप के समकालीन थे। शंख और लिखित—देवलऋषि के वंशज थे। पाञ्जालराज ब्रह्मदत्त ने प्रसिद्ध धर्माचार्य शंख को निधि देकर उत्तमगति प्राप्त की—

ब्रह्मदत्तश्च पांचाल्यो राजा धर्मभृतां वरः।
निधिं शंखमनुजाप्य जगाम परमां गतिम् ॥ (महा०)

उक्त शांख या शांखायनगोत्र में अनेक आचार्य हुए। सुयज्ञसंज्ञक शांखायन ने शांखायनकल्पसूत्र की रचना की थी—जैसा कि भाष्यकारों का कथन है—

"स्वमतस्थापनार्थं सुयज्ञाचार्यः श्रुतिमुदाजहार (शां० श्रौ० १।२।१८)
"शेषं परिभाषां चोक्त्वा प्रक्रमते भगवान् सुयज्ञः सूत्रकारः"
(शां० श्रौ० भाष्य ११।१।१)

एक गुणाख्य शांखायन का उल्लेख ब्राह्मणवंशपाठ में मिलता है। शांखायनश्रौतसूत्र में १८ अध्याय हैं। यह एक विशालाकार ग्रन्थ है। इनमें दर्शपूर्णमास से अश्वमेध जैसे श्रौतयज्ञों का विस्तारपूर्वक निरूपण है।

शांखायनगृह्यसूत्र में ६ अध्याय हैं। इसके प्रणेता भी सुयज्ञ शांखायन थे। शांखायनगृह्यसूत्र में पश्विष्टि एवं मांसभक्षणसम्बन्धी मनु के नाम से वचन उद्धृत हैं, जो वर्तमान मनुस्मृति में मिलते हैं।

शांखायनकल्प की भाषा ब्राह्मणसदृश है।

(३) कात्यायन—कात्यायनकृत श्रौतसूत्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, इनके द्वारा रचित अनेक वैदिकग्रन्थ प्राप्य हैं, जिनकी सूची आगे लिखेंगे। 'कत' कोई प्राचीन ऋषि थे, जो विश्वामित्र के वंशज थे - 'कत' का कोई भी वंशज 'कात्यायन' कहा जा सकता है। पाणिनि के सूत्र 'गर्गादिभ्यो यः' (अष्टा० ४।१।१०५) में 'कत' नाम पठित है। 'कत' का पुत्र 'कात्य' तथा पौत्र या वंशज 'कात्यायनसंज्ञा' को प्राप्त होगा। अतः 'कात्यायन' इस नाम के अनेक आचार्य हो चुके थे।[1] कात्यायनों के गोत्र भी अनेक थे। यथा एक कात्यायन कौशिकगणों के अन्तर्गत था, एक आङ्गिरस, तृतीय भार्गव तथा चतुर्थ द्व्यामुष्यायण। अतः सूत्रकार का वास्तविक

---

(१) त्रिकाण्डशेषकोश में पुरुषोत्तमदेव ने कात्यायन के पाँच नाम कथित हैं—
'मेधाविमेधाजित् कात्यः कात्यायन सः।
पुवर्वसुर्वररुचिः ..... ॥ (२।२५)
मुद्राराक्षस में नन्द के मन्त्री राक्षस का नाम वररुचि कात्यायन था
'नाम्ना वररुचिः किं च कात्यायन इति श्रुतः। (कथासरित्सागर १।२।१)

नाम या वंश अज्ञात ही है, केवल अनुमान का विषय है। एक कात्यायन (वररुचि) वार्तिककार वैयाकरण था।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने लिखा है कि स्कन्दपुराण, नागर खण्ड, अ० १३० श्लोक ७१ के प्रमाण से एक कात्यायन याज्ञवल्क्य का पुत्र था। इसने वेदसूत्र (कल्पसूत्र) की रचना की थी—

कात्यायनंसुतं प्राप्य वेदसूत्रस्य कारकम्।
कात्यायनाभिधश्च यज्ञविद्याविचक्षणः।
पुत्रो वररुचिर्यस्य गुणसागरः॥

"स्कन्दपुराण में ही इस कात्यायन को यज्ञविद्याविचक्षण कहा है और उसके वररुचि नामक पुत्र का उल्लेख है। याज्ञवल्क्यपुत्र कात्यायन ने ही श्रौत, गृह्य, धर्म और शुक्लयजुः पार्षद आदि सूत्रग्रन्थों की रचना की थी। एक कात्यायन कौशिकपक्ष का है, इसने वाजसनेयों के आदित्यायन को आङ्गिरसायन स्वीकार कर लिया था। वह स्वयं प्रतिज्ञापरिशिष्ट में लिखता है 'एवं वाजसनेयानामङ्गिरसां वर्णानां सोऽहं कौशिकपक्षशिष्यः पार्षद् पञ्चदशसु तत्तच्छाखासु साधीयःक्रमः।" यही कात्यायन शुक्लयजुर्वेद के अङ्गिरसायन की कात्यायनशाखा का प्रवर्तक है। .....हमारा अनुमान है कि याज्ञवल्क्य का पौत्र, कात्यायन का पुत्र 'वररुचि' कात्यायन अष्टाध्यायी का वार्तिककार है[1]।"

याज्ञवल्क्य वाजसनेय का उक्त कात्यायन से क्या सम्बन्ध था, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता, संभवतः वह पौत्र या वंशज अवश्य था। क्योंकि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियों में एक कात्यायनी थी।[2] जिसका पुत्र कात्यायन हो सकता है। फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि 'कात्यायन' एक गोत्रनाम था।

सूत्रकार कात्यायन, शौनक का शिष्य तथा सूत्रकार आश्वलायन का सतीर्थ्य था। पं० भगवद्दत्त ने यही मत पुष्ट किया है।[3] षडगुरुशिष्य के आधार पर

---

(१) संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० २११-२१२।

(२) अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुर्मैत्रेयी च कात्यायनी।
(बृ० उ० ४।५।१)

(३) आश्वलायन का साथी, पर वयः में बहुत छोटा साथी मुनि कात्यायन था। कात्यायन से कुछ बड़ा और मुनि व्याडि का भागिनेय वैयाकरण पाणिनि था। इनका समकालिक और जैमिनि के सूत्रों पर भाष्य रचनेवाला आचार्य उपवर्ष था। कात्यायन अपने श्रौतसूत्र में जैमिनीयमीमांसा के सूत्रों का संक्षेप करता है। (भा० बृ० इंति० प्र० भाग, पृष्ठ २८१)।

मैक्समूलर[1] ने भी यह सब कुछ माना है। अतः कात्यायन, सूत्रकार वाजसनेय का वंशज और कुलपति शौनक का शिष्य था।

कल्पसूत्रकार कात्यायन रचित ग्रन्थों की सूची 'कात्यायनश्रौतसूत्र की भूमिका (पृष्ठ २८) में पण्डित विद्याधरशर्मा ने लिखी है, उसको यहाँ यथावत् उद्धृत करते हैं—(१) श्रौतसूत्र (२) गृह्यसूत्र (३) धर्मसूत्र (४) शुल्वसूत्र (५) वाजसनेयप्रातिशाख्य (६) ऋक्सर्वानुक्रमसूत्र (७) शुक्लयजुः सर्वानुक्रमसूत्र (८) छागलसूत्र (९) कूर्मलसूत्र (१०) प्रतिज्ञासूत्र (११) अनुवाकसूत्र (१२) सामसर्वानुक्रमणी (१३) अथर्वसर्वानुक्रमणी (१४) त्रिकण्डिकासूत्र (१५) स्नानसूत्र (१६) कूर्मलसूत्र, (१७) वार्तिकपाठ (१८) कर्मप्रदीप (१९) छन्दोगपरिशिष्ट (२०) कात्यायनस्मृति (२१) गृह्यपरिशिष्ट (२२) श्राद्धसूत्रम् (२३) रुद्रसूत्र (२४) प्राकृतमञ्जरी (२५) यूपलक्षणपरिशिष्ट (२६) उपग्रन्थसूत्र (२७) चरणव्यूहपरिशिष्ट (२८) पार्षदसूत्र (२९) ऋग्यजुःपरिशिष्ट (३०) इष्टकापूरणसूत्र (३१) प्रवराध्याय (३२) उक्थ्यशास्त्र (३३) क्रतुसंख्यापरिशिष्ट (३४) निगमपरिशिष्ट (३५) हौत्रपरिशिष्ट (३६) प्रसवोत्थान (३७) भाषिकसूत्र।

उपर्युक्त ग्रन्थ किसी एक ही कात्यायन की कृतियाँ है, इसमें सन्देह है।[2] इन सूत्रग्रन्थों की रचना अनेक कात्यायनों अथवा कात्यायनचरण के अनेक आचार्यों ने की होगी।

---

(१) शौनकस्य प्रसादेन कर्मज्ञः समपद्यत।
कात्यायनमुनिर्मेने त्रयोदशकमत्र तु।
शौनकीयं च दशकं तच्छिष्यस्य त्रिकं तथा।
द्वादशाध्यायकं सूत्रं चतुष्कं गृह्यमेव च।
वाजिनां सूत्रकृत्साम्नांमुपग्रन्थस्य कारकः।
स्मृतेश्च कर्त्ता श्लोकानां भ्राजनाम्नां च कारकः
अथर्वणां निर्ममे यः सम्यग्वै ब्राह्मकारिका।
महावार्तिकनौकारपाणिनीयमहार्णवे।
यत्प्रणीतानि वाक्यानि भगवास्तु पतञ्जलिः।
व्याख्याच्छान्तनवीयेन महाभाष्येण हर्षितः। (षड्गुरुशिष्य, सर्वानुक्रमणीभाष्य)

(२) भ्राजसंज्ञकश्लोकों का कर्त्ता कात्यायन यज्ञादि में अविश्वास करता था, वह याज्ञिकग्रन्थों का रचयिता नहीं हो सकता—यथा—उसके श्लोक से स्पष्ट है—यदुम्बरवर्णानां घटीनां मण्डलं महत्।
पीतं न गमयेत् स्वर्गं किं तत् क्रतुगतं नयेत्। (महाभाष्य, प्रथमाह्निक)

कात्यायन के निम्न आठ ग्रन्थ विख्यात एवं सुप्रतिष्ठित हैं—(१) श्रौतसूत्र (२) प्रातिशाख्य (३) वार्तिक (४) शुल्वसूत्र (५) कर्मप्रदीप (६) ऋक्सर्वानुक्रमणी (७) भ्राजसंज्ञकश्लोक (८) वाररुचकाव्य।

पतञ्जलि ने महाभाष्य (३।२।३) में 'वाररुचं काव्यम्' का स्मरण किया है। समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित काव्य में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः।
न केवलं व्याकरणं पुपोष दाक्षीसुतस्येरितवार्तिकैर्यः।
काव्येऽपि भूयोऽनुचकार तं वै कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्षः।[1]

प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन और सूत्रकार कात्यायन में एकता स्थापित करने के कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं हैं। इस सम्बन्ध में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के विभिन्न मत हैं। मैक्समूलर के मत में वाजसनेयि प्रातिशाख्य, श्रौतसूत्र और वार्तिककर्त्ता कात्यायन एक ही था।[2] वेवर इनको पृथक् पृथक् मानता था।[3] गोल्डस्टकर के मत में इन तीनों ग्रन्थों का कर्त्ता एक ही कात्यायन था।[4] श्रीयुधिष्ठिरमीमांसक के मत में इन तीनों ग्रन्थों का रचयिता एक ही कात्यायन था। इनके मत में वाजसनेयिप्रातिशाख्य और वार्तिक में अनेकत्र साम्य है, अतः उनका कर्त्ता एक ही कात्यायन था।[5]

भारद्वाज—कृष्णयजुर्वेदीय आचार्यों में, जिनके कल्पसूत्र उपलब्ध हैं, उनमें भारद्वाज, संभवतः प्राचीनतम आचार्य थे। श्रीकाशिकरमहोदय ने भारद्वाज के सूत्रग्रन्थ, वैदिक संशोधनमण्डल, पूना से प्रकाशित किए हैं। इस कल्प के चार भाग प्रकाशित हुए हैं—श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, पितृमेधसूत्र और परिशेषसूत्र। पितृमेधसूत्र संभवतः एकमात्र भारद्वाज का ही प्राप्य है। भारद्वाजकल्प और आपस्तम्बकल्प में पर्याप्त साम्य है और भारद्वाज के सूत्र आपस्तम्ब से प्राचीनतर हैं। आपस्तम्ब ने

---

(१) कृष्णचरित, श्लोक १४; १५)
(२) द्रष्टव्य—ए हिस्ट्री आफ एंशेन्ट संस्कृत लिटरेचर, पृ० ७१।
(३) ,, बेवरकृत वाजसनेयिप्रातिशाख्य की भूमिका।
(४) ,, पाणिनि—हिज प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर।
(५) द्रष्टव्य—शुक्लयजुर्वेदीयप्रातिशाख्य के अनेकरूप कात्यायनीयवार्तिकों से समानता रखते हैं। यह समानता भी इनके पारस्परिक सम्बन्ध को पुष्ट करती है। (सं० व्या० शा० का इति० पृ० २१३)
(६) ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २३५।

अपने श्रौतसूत्र में २२ स्थानों पर भारद्वाज का मत उद्धृत किया है। आपस्तम्ब-सम्प्रदायसहित प्रायः सभी चरण भारद्वाजपितृमेधसूत्र का उपयोग करते थे—

भारद्वाजकृतसूत्रं तद्भाष्यं कल्पकारिका।
सुविलोक्यानाहिताग्नैः समन्त्रं पैतृमैधिकम्।
आपस्तम्बैरपिग्राह्यं नान्यत् सूत्रं हि विद्यते॥

मनु या मानव (आचार्य)—इसका धर्मसूत्रकार या स्मृतिकर्त्ता प्रजापति मनु से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रजापति मनु कल्प (सृष्टि) के आदिम आचार्य थे और यह मनु या मानवाचार्य भारतोत्तरकालीन व्यक्ति थे, इन दोनों का कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं। कृष्णयजुर्वेदीय चरकचरण के द्वादश भेद थे, उनमें एक मैत्रायणीयचरण था। मैत्रायणीयचरण के ही मानव, वाराह आदि अनेक भेद हुए।

मानवश्रौतसूत्र को सर्वप्रथम गोल्डस्टकर ने जर्मनी में प्रकाशित किया। पाणिनि ने गर्गादिगण (४।१।१०५) में कल्पसूत्रकार मनु का गर्ग आदि के साथ नाम पढ़ा है—"गर्ग, वत्स, शङ्ख, धनंजय, शट्, वभ्रु, मण्डु, मनुः, कपि, कत, कण्व, शकल, कुण्डिन, यज्ञवल्क्य, शण्डिल्य, मुद्गल, जतूकर्ण, दल्भ, चिकित।" ये सभी प्राचार्य गोत्रप्रवर्तक एवं सूत्रकार थे, और इनके वंशजों (पुत्रों या पौत्रों) ने सूत्रग्रन्थ रचे। इनके अपत्य हुए—गार्ग्य, वात्स्य, शांख्य, धानंजय, शाट्य, बाभ्रव्य, माण्डव्य मानव, काप्य, कात्य, काण्व, शाकल्य, कौण्डिन्य, याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, मौद्गल्य, जातूकर्ण्य, दाल्भ्य चैकत्य। इनके ही वंशज क्रमशः गार्गायण, शांखायन, वात्स्यायन, शाट्यायन, काण्वायन आदि प्रथित हुए।

अतः मानव आचार्य, जिनके पूर्वज मनु थे, वे शंखादि आचार्यों के समकालीन थे, शंखादि का परिचय पहिले ही लिखा जा चुका है।

मानव श्रौतसूत्र के १६ अध्याय इस प्रकार है—(१) दर्शपूर्णमास आदि (२) अग्निष्टोम (३) प्रायश्चित (४) प्रवर्ग्य (५) इष्टि (६) अग्निचयन (७) वाजपेय, द्वादशाह, गवामयन (८) अनुग्राहिका (९) राजसूय (१०) अश्वमेध (११)एकाह (१२) अहीन (१३) सत्र (१४) गौनामिक (१५) शुल्वसूत्र (१६) वैष्णव। अन्त में दो अध्यायों में (१) प्रवर एवं (२) श्राद्ध परिशिष्ट हैं।

मानवगृह्यसूत्र पृथक् से प्रकाशित हैं। मानवश्रौतसूत्र का एक संस्करण डा० रघुवीर ने भी प्रकाशित किया था।

वाराह—ये आचार्य भी मानव, याज्ञवल्क्य, शांखायन, कात्यायन आदि के समकालीन सूत्रकार थे। ये भी चरकचरण के अन्तर्गत हुए। वाराहरचित श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र प्रकाशित हैं। वाराहश्रौतसूत्र अपेक्षाकृत लघुतर है। इसके तीन

भाग हैं—(१) प्राक्सौमिक (२) अग्निचयन (३) वाजपेयादिक। डा० रघुवीर ने सरस्वतीविहार, दिल्ली से इसे प्रकाशित किया हैं।

सत्याषाढ़ या हिरण्यकेशी—ये आचार्य तैत्तिरीयसम्प्रदाय के अन्तर्गत खाण्डिकेयचरण में हुए। इनके उक्त दोनों नाम प्रसिद्ध हैं। हिरण्यकेशिकृतश्रौतसूत्र धर्मसूत्र और गृह्यसूत्र प्रकाशित हैं। हिरण्यकेशीकल्प में २७ प्रश्न (अध्याय) हैं। इस कल्प के शुल्वसूत्र और पितृमेधसूत्र भी मिलते हैं।

बौधायन—पाश्चात्यों के मत में बौधायन प्राचीनतम और पं० भगवद्दत्त के मत में अर्वाचीनतम सूत्रकार थे, यह विवेचन सप्रमाण पूर्व ही किया जा चुका है। बौधायनश्रौतसूत्र में ब्राह्मणग्रन्थसदृशभाषा के प्रयोग के कारण ही पाश्चात्यों को यह भ्रम हुआ, वास्तव में बौधायन ने श्रौतसूत्र में किसी ब्राह्मणग्रन्थ को ही उद्धृत किया है।

बौधायनकल्प के १९ प्रश्नों तक श्रौतसूत्र, २० अध्यायों में कर्मान्तिसूत्र, ४ अध्यायों में द्वैधसूत्र, ४ अध्यायों में गृह्यसूत्र, ४ अध्यायों में धर्मसूत्र और ३ अध्यायों में शुल्वसूत्र हैं।

कालैण्ड द्वारा प्रकाशित बौधायनकल्प में क्रम इस प्रकार है—औपानुवाक्य, काठक, द्वैध और कर्मान्तिसूत्र, स्पष्ट हैं बौधायनकल्प में, उत्तरकाल में हस्तक्षेप हुआ है।

वाधूल—आचार्य वाधूलकृत श्रौतसूत्र प्रकाशित है।

वैखानस—विखनस् या वैखानसमुनि ने वैखानसकल्पसूत्र की रचना की।

येन वेदार्थं विज्ञाय लोकानुग्रहकांक्षया।
प्रणीतं सूत्रम् औखयें तस्मै विखनसे नमः।

तित्तिरि की परस्परा में 'उख' नाम का अन्तेवासी था, वह संभवतः विखनस् का वंशज था। इसी ने वैखानसकल्पसूत्र की रचना की। एक विखनस् मुनि का उल्लेख तैत्तिरीयारण्यक में मिलता है। इस कल्प में २१ अध्याय हैं।

Library IIAS, Shimla
H 294.1 V 99 V
00065516